संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के
51वें आचार्य पदारोहण दिवस (मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया) एवं **अर्हं योग प्रणेता**
पूज्य मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर जी महाराज के रजत दीक्षा वर्ष
(माघ सुदी पूर्णिमा वीर नि. सं. 2548, सन् 2022) के पावन अवसर पर प्रकाशित

ग्रंथांक : 13

पंचलब्धि

मंगल देशना
मुनि श्री प्रणम्य सागर

आर्हत विद्या समिति, गोटेगाँव

कृति : **पंचलब्धि**

आशीर्वाद : परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

मंगल देशना : अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज

अधिकार : सर्वाधिकार सुरक्षित किसी को भी प्रकाशित करने का अधिकार है। किताब का स्वरुप, ग्रन्थ नाम, लेखक संपादक एवं स्तर परिवर्तन न करें। प्रकाशन से पहले लिखित अनुमति आवश्यक है।

संस्करण : प्रथम, फरवरी 2023

प्रतियाँ : 1000

आई.एस.बी.एन. : 978-81-959068-3-3

पुण्यार्जक : **श्रीमति शांति देवी, श्री तेज बहादुर जैन**
श्रीमति शिखा जैन, सिद्धांत जैन-रिद्धि जैन
सौम्या जैन, मुस्कान जैन
200 जागृति एन्क्लेव, दिल्ली

मूल्य : स्वाध्याय (पुनः प्रकाशन हेतु 150/- मात्र)

प्रकाशक : आर्हत विद्या समिति, गोटेगाँव
मोबाइल: 9425837476

प्राप्ति स्थान : 1. आर्हत विद्या समिति, गोटेगाँव,
मोबाइल : 9425837476 (नवीन जैन)

2. आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति
109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्जैन
मोबाइल : 9425092483 (शैलेन्द्र जैन)

मुद्रक : अरिहंत ग्राफ़िक्स, दिल्ली
दूरभाष - 9958819046

प्रस्तावना

जैन साहित्य परम्परा अपने आप में बहुत समृद्ध रही है। साक्षात् तीर्थंकर भगवान के दिव्यज्ञान (केवलज्ञान) के द्वारा दिखाए गये विश्व के स्वरुप को, तीर्थंकर और गौतम गणधर की वाणी को और उनके उपदेशों को हमारे आचार्यों ने **जैन ग्रन्थों के रुप में सजाया और संवारा है**। साहित्य परम्परा में हमारे जैन मुनियों ने अथक परिश्रम से,अनेक भाषाओं में जैसे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि में हजारों महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है।

आचार्य कुन्दकुद स्वामी के समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों में,**आचार्य कार्तिकेय स्वामी** की कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ में,**गृद्ध-पिच्छाचार्य उमास्वामी जी के ग्रन्थ तत्वार्थसूत्र** एवं इसके टीकाकार **आचार्य पूज्यपाद , आचार्य अकलंक देव** आदि अनेक-अनेक आचार्यो ने अपने ग्रन्थों में सम्यग्दर्शन विषय के अंतर्गत,अनेकों गाथाओं और श्लोकों के माध्यम से "**पंच लब्धि "** विषय पर प्रकाश डाला है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती अत्यन्त प्रभावशाली और सिद्धान्त शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे। सिद्धान्त ग्रन्थों के अधिकारी विद्वान होने के कारण आचार्य नेमिचन्द्र महाराज ने **धवला** सिद्धान्त का मन्थन कर **गो-म्मटसार** और **जयधवला** टीका का मंथन कर **लब्धिसार ग्रन्थ** की रचना की है।

महान आचार्यों की द्वादशांग वाणी रूपी ज्ञान को और उनके द्वारा लिखित अनेकों ग्रन्थों के अथाह ज्ञान को आत्मसात कर पंचमकाल के महावीर के लघुनंदन **आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी** जो स्वयं में साक्षात् सम-यसार हैं। उनके परम प्रिय शिष्य जिन्हें साक्षात् "सरस्वतीपुत्र" की उपमा दी जाती है, **अर्हं योग प्रणेता गुरुवर 108 प्रणम्य सागर जी महाराज** ने सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में सहायक "लब्धि" विषय को स्वयं पाठन करके स्वयं जीवन में उतारा और आचार्यों द्वारा प्रणीत गाथाओं और श्लोकों को कण्ठस्थ करके, चिंतन और मनन किया।

9 अक्टूबर से 15 अक्टूबर,2012 में गोटेगांव समाज के द्वारा एक "मनन" शिविर का आयोजन किया था जिसमें विद्वत् वर्ग एवं ब्रह्मचारी भाईयों को समाज द्वारा आमंत्रित किया गया था। उस अद्वितीय आध्या-

त्मिक शिविर में पूज्य मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा प्रातःकाल, अपराह्न और सांध्यकाल तीनों ही समय **"पंचलब्धि - सम्यग्दर्शन की उपलब्धि"** महत्वपूर्ण एवं गूढ विषय पर विद्वत वर्ग एवं ब्रह्मचारी भाईयों को सरल,सु-बोध भाषा में ज्ञान संचन कराया गया, जिनमें से कुछ ब्रह्मचारी तो वर्तमान में मुनि पद को सुशोभित कर हैं। जैसे-अमृत की एक-एक बूंद अमूल्य होती है उसी प्रकार परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज द्वारा **"लब्धिसार ग्रन्थ"एवं "तत्वार्थसूत्र ग्रंथ" की विवेचना** आगत विद्वान एवं ब्रह्मचारी भाईयों के लिए एक **"अमृत कुण्ड"** था। मुनिश्री की मंगल वाणी का हर वर्ग ने भरपूर लाभ प्राप्त किया। पूज्य मुनि श्री की असीम कृपा सबको प्राप्त हुई। मुनि श्री ने बहुत ही विद्वत पूर्ण व्याख्यान के माध्यम से "पंचलब्धि" को लब्धिसार ग्रन्थ के माध्यम से बहुत ही सरल, सुबोध भाषा में समझाया। तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के अध्याय दो **"सम्यक्त्व-चारित्रे"** सूत्र में आचार्य पूज्यपाद ने तीन प्रकार की लब्धियों की चर्चा की थी मुनि श्री ने इस सूत्र में पाँचों लब्धियों को गर्भित किया था, इस शिविर की यह प्रमुख्य विशेषता रही है ।

लब्धि का अर्थ "प्राप्ति" होता है। जब हम किसी चीज को प्राप्त करते हैं तो उस प्राप्ति को हम एक उपलब्धि समझते हैं उसी उपलब्धि को यहां **"लब्धि"** के रुप में कहा है, जीवात्मा के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि सम्यक दर्शन को प्राप्त करने से पहले पाँच लब्धियों की प्राप्ति होती है और ये लब्धियाँ मोक्ष मार्ग का प्रारंभ कराती है।

मुनि श्री ने **पाँच लब्धियों** के वर्णन में सबसे पहले **काल लब्धि** को समझाया है। काल लब्धि से ही सम्यक दर्शन की प्राप्ति होती है। काल की प्राप्ति होने पर कार्य होता है और कार्य होने पर जो काल हमारे सामने उपलब्ध है, उसे काल लब्धि कहा जाता है। जिस समय पर कार्य हो जाए उस समय को काल लब्धि कहना चाहिए। आचार्यों ने काल लब्धि को तीन प्रकार से बताया है-

(1) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल शेष रह जाना

(2) कर्मों की स्थिति मध्यम रह जाए

(3) जीव भव्य हो, संज्ञी पंचेन्द्रिय हो, विशुद्धि से सहित हो, जागृत हो, पर्याप्तक हो तभी जीव सम्यग्दर्शन के योग्य होता है।

काल लब्धि एक धागा है और पंचलब्धि धागे में पिरोए गए मोती हैं। काल लब्धि एक सामान्य लब्धि है, पाँच लब्धियाँ विशेष लब्धियाँ है।

(1) **क्षयोपशम लब्धि – "प्रतिसमयं अनंतगुण विशुद्धया वर्धमान"** जीव जब प्रतिसमय अनंत गुणी विशुद्धि से बढ़ता हुआ कर्म मल पटल को और अनुभाग शक्ति को कम करता चला जाता है, तब आत्मा के परिणामों में पहली क्षायोपशमिक लब्धि प्राप्त होती है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यात्व के गुण और दोषों के बारे में जो तत्वज्ञान हमारे अंदर उत्पन्न होता है वह इस लब्धि के माध्यम से ही होता है।

(2) विशुद्धि लब्धि – क्षयोपशम लब्धि से जो जीव के साता आदि पुण्य प्रकृतियों का निरंतर बंध होता रहता है। उस परिणाम की प्राप्ति ही विशुद्धि लब्धि है।

पहली लब्धि से उत्पन्न हुआ जो भाव है वही भाव जीव को यह साता आदि प्रकृतियों को बांधने के लिए कारणभूत है। क्षयोपशम लब्धि करण रूप है और विशुद्धि लब्धि कार्य रूप है। विशुद्धि लब्धि आगे की लब्धियों के लिए कारण रूप होती है।

(3) देशना लब्धि – छह द्रव्य, नव पदार्थ का उपदेश करने वाले आचार्य आदि का लाभ मिलना, उनके उपदेश की प्राप्ति अथवा उनके द्वारा उपदेशित पदार्थ को धारण करने की प्राप्ति ही देशना लब्धि है। देशना लब्धि को इस सूत्र द्वारा अच्छे से समझा जा सकता है।

"तन्निसर्गादधिगामद्वा" सम्यग्दर्शन की प्राप्ति निसर्ग और अधिगम से होती है।

निसर्गज सम्यग्दर्शन– इसमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए उपदेश की अपेक्षा नहीं रहती है, स्वभाव से ही सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है। जैसे–भरत के 923 पुत्र निगोद पर्याय से निकलकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर भगवान के समवशरण में पहुँच गए थे।

अधिगमज सम्यग्दर्शन– आचार्य आदि का उपदेश मिलने से अधिगमज सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। जैसे– मुनि महाराज के उपदेश से जीव को शेर की पर्याय में भी आत्मबोध प्राप्त कर सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया।

देशना लब्धि को प्राप्त करने के लिए पहले जीव के अंदर एक पात्रता होती

है और वह पात्रता क्षयोपशम और विशुद्धि लब्धि के माध्यम से आती है।

इस लब्धि को समझाते हुए मुनि श्री ने निसर्ग और अधिगम सम्यग्दर्शन और **अगुरुलघु गुण** को विस्तार से समझाया है।

(4) प्रायोग्य लब्धि जब कर्मों की स्थितियाँ घटकर अंतः कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण रह जाती है और कर्मों की अनुभाग शक्ति द्विस्थानीय हो जाए तब प्रायोग्य लब्धि की प्राप्ति होती है, एक कोड़ा-कोड़ी सागर के भीतर ही कर्मों का बंध होना प्रायोग्य लब्धि है।

मुनि श्री ने चार प्रकार के **घातिया कर्मों** के **अनुभाग- लता,लकड़ी,अस्थि और शैल** का उदाहरण देकर कर्मों की स्थितियाँ और कठोरता का विशेष वर्णन करते हुए

देशघाती प्रकृति और **सर्वघाती प्रकृति** के रुप में सभी को सरलता से समझाया है।

केवलज्ञान का महत्व बताते हुए मुनि श्री ने बताया कि केवलज्ञान तिजोरी के अंदर बंद हुआ ज्ञान है, जिसकी किरण आज तक बाहर आई नहीं हैं। **केवलज्ञान वह परिणति है जिसके बारे में आज तक कोई अनुभूति हुई ही नहीं है।** केवलज्ञान अनंत ज्ञेयों को अपने अंदर समाये रखने की क्षमता रखता है, वह अपने आप में बिल्कुल अलग, अद्भुत और विशुद्ध है।

कई बार जीव विशुद्धि के अभाव में प्रायोग्य लब्धि प्राप्त करने के बाद भी करण लब्धि प्राप्त नहीं कर पाता है, अतः उसे आचार्य प्रणीत गाथाओं का प्रतिदिन पाठ करना चाहिए।

(5) करण लब्धि करणलब्धि का अर्थ ऐसे परिणामों की प्राप्ति करना है जिन परिणामों के माध्यम से आत्मा को सम्यक्त्व के विरोधी(मिथ्यात्व) आदि कर्मों का उपशमन करना होता है। ये मिथ्यात्व आदि कर्म अन्तर्मुहूर्त तक न उदय में आतें हैं और न उदय के योग्य होतें हैं। इस परिणाम की प्राप्ति के लिए आत्मा में **अधःकरण,अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण** के परिणाम घटित होतें हैं, जिन्हें करण के नाम से कहा जाता है। ये तीनों परिणाम हमारी आत्मा में तब तक होंगे जब तक हम असंख्यात गुणी निर्जरा वाला विशेष कार्य करेंगें।

मुख्य रूप से आगम में दस करण बताये हैं। कर्मबंध की प्रक्रिया में **प्रकृ-**

तिबंध, प्रदेश बंध,स्थिति बंध और अनुभाग बंध आदि चार प्रकार के बंध को समझाते हुए मुनि श्री ने सरल सहज भाषा में दस करण- **बंध, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, सत्त्व, उदय, उदीरणा, उपशांत, निधत्ति, निकाचित** करण का भी विस्तार से वर्णन किया है।

भव्य और अभव्य दोनों प्रकार के जीव चार लब्धियों को प्राप्त कर सकते हैं। परंतु करण लब्धि केवल भव्य जीवों को ही प्राप्त होती है। पाँचों लब्धियाँ अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त के लिए होती हैं और एक के बाद एक क्रम से होती रहती हैं।

“”मनन शिविर” में शोध का विषय, ज्ञान, चिन्तन एवं शंकाओं का समाधान आदि अनेक शैलियों का संचय हुआ और इसका लाभ सभी वर्गों को प्राप्त हुआ। इस शिविर में प्राप्त अध्यात्म के आनंद को लेखनी से व्यक्त करना नामुमकिन है। उसका आनंद तो आगत विद्वानों के ह्रदय पटल में अंकित हो गया होगा। उस आनंद की अनुभूति सामान्य भव्य प्राणी एवं ज्ञानीजन भी प्राप्त कर सके, इस उद्देश्य को लक्ष्य करके यह पुस्तक "**पंच लब्धि"** सामान्य सुधि श्रावकों के लिए प्रस्तुत है। "**इसमें लब्धिसार-ग्रन्थ" की व्याख्या "पंचलब्धि" विषय पर आधारित प्रवचनों को समाहित किया गया है।** भाषा बहुत ही सरल एवं सुबोध है जिसे सामान्य जन मानस भी समझ सके और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो सके।

"सम्यग्दर्शन धर्म का मूल स्तम्भ है" । स्तम्भ मजबूत होगा तभी हम मोक्ष महल की प्रथम सीढी को पार करके आगे की ओर अग्रसर हो सकते हैं। विद्वत वर्ग के द्वारा जो प्रश्न पूछे गये थे, जो शंकाऐं मन में थी, उन शंकाओं का समाधान जो गुरु महाराज जी द्वारा दिया गया था। **उन शंकाओं को समाधान सहित इस ग्रन्थ में समाहित किया गया है**। जिससे सुधी श्रावकों को विषय अधिक स्पष्ट हो सके और स्वाध्याय चिंतन में अधिक मन लग सके। सभी श्रावकों के स्वाध्याय में निरंतर धर्मवृद्धि हो, यही प्रभु से प्रार्थना है।

डॉ सरिता जैन दोशी
(अर्हं टीम)

णवदेवदा थुदि (नवदेवता स्तुति)

रचयिता : मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर जी महाराज

णमो णमो णमो णमो, णमो जिणाण ते णमो
सुरक्ख रक्ख रक्ख मां, जिणेस तुं गणेस तुं
सुरासुरेहि वंदिदा, मुणीसरेहि कामिदा
सुभव्वजीवसंथुदा, णमामि सिद्धसंपदां॥1॥
सुहं दिसंतु मे जिणा...

अर्थ :- जिनों को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। हे जिनेश! हे गणेश! आप मेरी अच्छी तरह रक्षा करो, रक्षा करो, रक्षा करो। जो सुर-असुरों से वंदित हैं तथा मुनीश्वरों द्वारा कामित हैं, श्रेष्ठ भव्य जीवों के द्वारा जो स्तुत हैं उस सिद्ध संपदा को मैं नमस्कार करता हूँ॥1॥

तवस्स वीरियस्स खं, सुणाणदंसणस्स जे
चरित्तधम्मयस्स पालगा जयंतु सूरिणो।
मणम्मि सव्वसत्थसार-भूदतच्चधारगा
मुणंति पाठगा वुसं लसंतु धम्मदेसगा॥2॥
सुहं दिसंतु मे जिणा...

अर्थ :- जो तप के, वीर्य के, श्रेष्ठज्ञान, दर्शन के, चारित्र धर्म के जो पालक हैं, वह वास्तव में सूरी (आचार्य परमेष्ठी) जयवंत हों। समस्त शास्त्रों के सारभूत तत्व के धारक, पाठक धर्म को जानते हैं, ऐसे धर्म देशक सदा शोभायमान रहें॥2॥

गजेहि साहिमाणगा समं सिहेहि पोरुसा
महीव - खंतिमाणुसा सया जयंतु साहवो
जिणिंद-संपणीद-भारदी जिणागमो महा
खमादि-धम्म-देसणा जिणुत्त-धम्म-सोहणा॥3॥
सुहं दिसंतु मे जिणा...

अर्थ :- जो गज के समान स्वाभिमान को प्राप्त हैं, तथा सिंह के समान पौरुष

प्रधान हैं। पृथ्वी के समान क्षमा वाले मनुष्य साधु हैं, वे सदा जयवंत रहें। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कही गई भारती ही महान जिनागम है। क्षमादि धर्म की देशना जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ शोभनीय धर्म है॥3॥

जिणालया अकिट्टिमा य किट्टिमा जयंतु ते।
जिणिंदबिंबभासुरा महीतले जयंतु ते।
सणादणा णवावि देवदा सया जयंतु ते।
सुमंगला भवंतु मे सुमंगला भवंतु मे॥4॥
सुहं दिसंतु मे जिणा...

अर्थ :– वे अकृत्रिम और कृत्रिम जिनालय जयवंत हों, पृथ्वीतल में जिनेन्द्र भगवान के बिम्बों की शोभा सदा जयवंत हों। वे नव ही देवता सनातन हैं, वे सदा जयवंत हों, मेरे लिए सदा मंगल हों, मंगल हों॥4॥

अनुक्रमणिका

	पंचलब्धि	1
1.	क्षयोपशम लब्धि	10
2.	विशुद्धि लब्धि	21
3.	देशना लब्धि	50
4.	प्रायोग्य लब्धि	71
5.	करण लब्धि	98

पंचलब्धि

कालब्धि और पंचलब्धि –
इस संसार में हर किसी आत्मा को कोई न कोई लब्धियाँ अवश्य प्राप्त होती हैं। लब्धि का अर्थ प्राप्ति होता है। यह एक ऐसा स्वभाव है कि प्रत्येक आत्मा में ज्ञान का, दर्शन का और पाँचों ही अंतराय कर्म का कुछ न कुछ क्षयोपशम अवश्य रहता है। वस्तुतः अंतराय कर्म के क्षयोपशम से हमें जो प्राप्त है उसे लब्धि कहा जाता है। क्षयोपशम से हमें जो प्राप्त होता है उसे क्षायोपशमिक लब्धि कहते हैं। जो हमें समस्त अंतराय कर्म के नाश से प्राप्त होती है उसे क्षायिक लब्धि कहते हैं। इन लब्धियों के अलावा अभी यहां निवेदन किया गया कि पंच लब्धि के बारे में कुछ बताना है। उन पंच लब्धि में सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की योग्यता का निरूपण किया जाता है। पांच लब्धियों में हमे सबसे पहले यह समझना है कि कुछ ऐसी लब्धियां है जिन्हें इस जीव ने आज तक प्राप्त नहीं किया। सभी जीवों के पास में क्षयोपशम से प्राप्त लब्धियां भले ही हों लेकिन वह कौन सी लब्धि है जिसे आचार्य कहते हैं कि वह आत्मा को प्राप्त नहीं हुई हैं।

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में एक गाथा आई है

इदि एसो जिणधम्मो अलद्धपुव्वो अणाइकालेवि।
मिच्छत्तसंजुदाणं जीवाणं लद्धिहीणाणं॥ का. अनु. ४०८॥

अर्थात्:- इस प्रकार यह जिनधर्म, कालादिलब्धि से हीन मिथ्यादृष्टि जीवों को अनादि काल बीत जाने पर भी प्राप्त नहीं हुआ।

इस गाथा में कार्तिकेय महाराज कहते हैं कि यह जो जिनधर्म है, उस जिनधर्म को अभी तक अनादि काल से इस जीव ने प्राप्त नहीं किया, वह लब्धियों से रहित है इसलिये उसे इस जिनधर्म की प्राप्ति नहीं हुई। कौन सी लब्धि है? जिससे यह हीन है तो उसकी टीका में यह स्पष्ट हुआ कि क्षयोपशम लब्ध्या-दिहीना: अर्थात् जो क्षायोपशमिक आदि लब्धियां हैं, उन लब्धियों से हीन ऐसे अनंत जीव है जिन्होंने अभी तक इस जिनधर्म को प्राप्त नहीं किया और वह अनंत जीव निगोद पर्याय में है उनके लिये भी यहां Indication और ऐसे जीव जिनको पञ्चेन्द्रिय पर्याय प्राप्त करके भी जिनधर्म प्राप्त 'करने' का निमित नहीं

मिला उनके लिये भी Indication है।

ये लब्धियों से हीन होकर के अपने उस समय को, अपने उस काल को गुजारते हैं और उनका अनंत काल गुजर चुका है। इन पाँच लब्धियों के अलावा भी जब कभी हम सम्यग्दर्शन की बात करते हैं तो आचार्यों के ग्रंथों में भी हमें यह उपलब्ध होता है कि एक लब्धि और है जिसे काल लब्धि कहते हैं। इन पाँच लब्धियों के अलावा काल लब्धि को भी हम सबसे पहले लेकर आ जाते हैं। जब भी हम सम्यग्दर्शन की योग्यता को जानने का प्रयास करते हैं तो कई आचार्य महोदयों के माध्यम से यह जानने में आता है काल लब्धि के वश से ही हमें यह सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। हमारे सामने एक लब्धि और आती है। आज अपने को विचार करना है कि पाँच लब्धियाँ ही हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये, योग्यता के लिये जरूरी है या इसमें काल लब्धि को और जोड़कर हमें छः लब्धियां बनाना है। काल लब्धि सबसे पहले लिखी गई है और उस काल लब्धि के विषय में बहुत सारे लोगों को बहुत सारे भ्रम रहते हैं। जैसे ही काल यह शब्द आता है हमारे मन के अंदर एक भाव आता है, काल माने समय और उस समय की प्राप्ति होने पर सम्यक्त्व होगा, उसका नाम है काल लब्धि। जब काल लब्धि आयेगी हमारे लिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जायेगी। जैसे ही हम काल लब्धि की ओर जाते हैं. हमारे सामने एक शब्द आ जाता है नियति क्योंकि नियति और काल लब्धि एकार्थ वाची है। कहीं-कहीं पंच समवाय की भी कल्पना की जाती है और पंच समवाय में नियति पुरुषार्थ, काल लब्धि, भवितव्यता आदि चीजें आ जाती हैं लेकिन कभी-कभी इन नियति के अलावा, काल लब्धि के अलावा हमारे सामने जो सबसे बड़ी चीज होती है, वह है आचार्यों की प्ररूपणा को समझने की एक कमी या उन आचार्यों के अभिप्राय को समझने की एक कमी। काल भी हमारे लिये एक निमित्त है क्योंकि जैनदर्शन में निमित्त और उपादान दोनों को बराबर रूप से स्वीकार किया गया है।

काल की प्राप्ति होने पर कार्य होता है कि कार्य होने पर जो काल हमारे सामने उपलब्ध है उसे काल लब्धि कहा जाता है? दो चीजे हैं, मान लो आपने कहा कि यहां पर "मनन" का अधिवेशन होना है। 9 तारीख आपने दी

सबसे पहले व्यवहार में वह तारीख आ जाती है। कब से होना है 9 तारीख, ये सबसे पहले काल सामने आ गया। जब तक 9 तारीख नहीं आयेगी तब तक कोई कार्य का प्रारंभ नहीं होगा लेकिन क्या उस तारीख मात्र के आने से ही कार्य हो जाता है। अगर उस कार्य को संपादन करने वाले यहाँ न हों तो क्या वह 9 तारीख उस कार्य का संपादन करा देगी। हमने काल को फिक्स कर लिया। काल भी फिक्स करने वाला कौन? वह जीव आत्मा और उस जीव आत्मा का पुरुषार्थ जिसके माध्यम से हम उस काल को नियत कर लेते हैं। कहने में आता है, 9 तारीख को कार्यक्रम होगा लेकिन वह कार्यक्रम 9 तारीख को करने वाला कौन होगा? इसके बारे में भी आपको विचार करना है। तारीख आने मात्र से कार्य नहीं हो सकता। काम जब भी होगा तब यह जीवात्मा के द्वारा होगा और उस समय जो तारीख होगी वह तारीख उसके लिये काल लब्धि रूप में कही जायेगी। **जिस समय पर कार्य हो जाये उस समय को काललब्धि कहना, न कि काल लब्धि का इंतजार करते हुये उस तारीख के होने की प्रतीक्षा करना।** दो चीजे हैं।

हमारे सामने आचार्य कहते हैं जब कभी भी हमें कार्य की प्राप्ति होगी तो "हेतु द्वया विष्कृतकार्य लिंगा"

आचार्य समंतभद्र महाराज की यह उद्घोषणा है। 2 कार्यों के माध्यम से वह कार्य आविष्कृत होता है और उस कार्य की जो प्राप्ति होगी, उस कार्य में हमारे लिये 2 ही हेतु पर्याप्त हैं। एक अंतरंग हेतु और एक बाह्य हेतु। अंतरंग हेतु में हमारा उपादान और बाह्य हेतु में हमारे लिये अनेक प्रकार के उदासीन और प्रेरक निमित्त आते हैं। यह सब कारण हैं। उदासीन निमित्त को हम उदासीन निमित्त के रूप में स्वीकार करें और प्रेरक निमित्त को प्रेरक निमित्त के रूप में स्वीकार करें।

काल लब्धि का अर्थ समय पर काम होने का है तो वह समय हम कालाणु को लेते हैं। काल द्रव्य को लेते हैं तो काल द्रव्य हमारे लिये उदासीन निमित्त है। काल द्रव्य हमारे लिये प्रेरक निमित्त नहीं है। काल द्रव्य के माध्यम से कार्य नहीं होता है लेकिन काल द्रव्य के साथ में जीव और पुद्गल का जो परिणमन होता है वह जिस काल में हो गया उसी को हम काल का नाम दे देते है जैसे कहा यह पंचमकाल है, तो पंचम काल का समय कहां

से शुरू हुआ? क्या किसी कालाणु के उन पर्यायों में कुछ अंतर आ गया जो इस पंचमकाल में इस प्रकार की पर्यायें उत्पन्न करेंगी कि इस पंचमकाल में कुछ नहीं हो पायेगा या उस जीव के परिणामों में इतना अंतर आ गया कि वह योग्यता इस प्रकार की हासिल नहीं कर पाया कि इस पंचमकाल में उसको मोक्ष नहीं हो वह तब पंचमकाल चतुर्थकाल, छटवाँ काल, यह जो विभाजन हुआ वह किस आधार पर हुआ? यह कालद्रव्य के आधार पर नहीं है। ये किसके आधार पर? इस समय से ऐसे जीव उत्पन्न नहीं होंगे जिनके पास उत्कृष्ट संहनन हो, जिनके पास में मोक्ष जाने की योग्यता हो ये उस जीव के परिणाम का उस जीव के परिणमन का अभाव होने पर हमने उस काल के ऊपर आरोप किया कि अब ये पंचमकाल चल रहा है। काल कोई सा भी हो इस पंचमकाल में भी मोक्ष होता है, हो सकता है। इस पंचमकाल में जो कोई भी जीव मान लो, कोई देव या विद्याधर विदेह क्षेत्र से किसी भी जीव को लाकर के इसी पंचमकाल में इसी स्थान पर गोटेगांव में लाकर के पटक दे तो उस जीव को यहाँ से भी मोक्ष हो जाये। काल हमारे लिये कभी भी बाधक नहीं है। उदासीन निमित्त कभी भी हमारी इच्छा में परिवर्तन नहीं करा सकता है। **आचार्य विद्यानंदजी महाराज** ने **तत्वार्थ श्लोक वार्तिक** में बहुत अच्छे शब्दों में लिखा है कि उदासीन निमित्त इच्छा से प्राप्त होने वाले कार्यों में कभी भी सहायक होता है, विशेष कारण नहीं होता है। सहायक का अर्थ है कि वह हमारे लिये हमेशा-हमेशा बना हुआ है लेकिन जो हमारी इच्छा से होने वाले कार्य है उनमें वह न साधक है, न वह बाधक है। काल लब्धि को अवधारणा हमारे सामने जैसे ही आती है कई लोगों के मन में यह विचार आता है कि सम्यग्दर्शन काल लब्धि से ही होता है जब तक काल लब्धि नहीं आयेगी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी और कई आचार्यों के द्वारा इस प्रकार लिखा भी गया है क्योंकि जैसे ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का वर्णन आता है तो वो लिखते हैं काल लब्धि आदि निमित्त वशात् और काल लब्धि आ गई तो सबसे पहले हमारे सामने काल लब्धि के रूप में अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल आ जाता है।

जैसे ही हमने सर्वार्थसिद्धि में पढ़ा कि उपशम सम्यग्दर्शन कैसे होता है? तो आचार्य महाराज ने एक काल लब्धि हमारे सामने रख दी। जब तक अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल शेष नहीं बचेगा आपके लिये सम्यग्दर्शन की

योग्यता नहीं हो सकती। **इयं एका काल लब्धिः** दूसरी काललब्धि आश्रित है। कर्म आश्रित है। जब कर्म स्थिति न जघन्य हो, न उत्कृष्ट हो, मध्यम हो तो वह दूसरी काल लब्धि है तीसरी काल लब्धि है भवापेक्षया काल लब्धि। तीन काल लब्धि की आवश्यकता है। तीनों क्रम से या किसी एक की या इसी क्रम में या पिछले क्रम से। सब बातों के बारे में आपको एक ज्ञान, एक समझ हम इसलिये दे रहे हैं कि अपने लिये ये काल लब्धि पंच लब्धि से भिन्न है या इन्हीं में ये काल लब्धियां समाई हुई हैं, ये भी आज अपने को एक मनन करना है चिंतन करना है। अगर इन काललब्धियों से हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। तो जब हम लब्धिसार ग्रन्थ को उठाकर देखते हैं तो वहां पर आचार्य महाराज कहते हैं कि पांच लब्धियों से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। वहाँ पर उन्होंने काल लब्धि का कोई वर्णन नहीं किया और वहाँ पर किसी काल लब्धि की कोई चर्चा नहीं और इधर हम देखते हैं कि तीन प्रकार की काल लब्धियां है तो हम कौन सा मनन करें, चिंतन करें? और उस मनन में हमसे निकलेगा कि जो पंच लब्धियां बताने जा रहे हैं उससे पहले उन्होंने एक गाथा और दी है **लब्धिसार क्षपणासार** ग्रंथ में और मंगलाचरण के बाद तुरंत दूसरी गाथा दी है जिसमें वो लिखते हैं,

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो ।
पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धि चरिमम्हि ॥2॥

अर्थात् :- चारों गति वाला अनादि व सादि मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त गर्भज मंद कषायरूप, विशुद्ध, साकार, जीव पांचवी करणलब्धि में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है।

सबसे पहले उन्होंने यह योग्यता बताई है और यह योग्यता क्या है? तो हम समझते हैं कि यह योग्यता भी काल लब्धि की एक योग्यता है। सबसे पहले चार गति का वह जीव होना क्योंकि चारों गति में वह कहीं भी सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकता है या यहां पर इन्होंने मिथ्यादृष्टि जीव को लिया है क्योंकि प्रथमोपशम प्राप्त करने की योग्यता उस मिथ्यादृष्टि को है इसलिये मिथ्यात्व शब्द लिया। बाद में संज्ञी यानि असंज्ञी नहीं होना चाहिये। पुण्णो यानि पर्याप्तक होना चाहिये। गर्भज यानि गर्भज को ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करने को योग्यता बता रहे हैं। विशुद्ध और साकार बहुत सारी शर्तें हैं। इन

शर्तों में सबसे पहली जो काल लब्धि है उसके लिये हमने कहा था कि हमें जिनधर्म की प्राप्ति नहीं हुई वो लब्धि से जब तक हम हीन है तब हमारे लिये वह सम्यग्दर्शन की योग्यता नहीं आ सकती। उस लब्धि की प्राप्ति कब होगी? जब ये चार गति में कोई भी मिथ्यादृष्टि हो और जो मिथ्यादृष्टि शब्द दिया है उस पर भी हम विचार करें कि मिथ्यादृष्टि भव्य भी होते हैं अभव्य भी होते हैं लेकिन यहां पर केवल मिच्छो कहा। भव्वो नहीं कहा। यहाँ पर भव्य मिथ्यादृष्टि को ग्रहण करना ये हमारे ज्ञान की बात है। जो शब्द दिया है वह मिथ्यादृष्टि शब्द दिया है जब हम इसकी तुलना करते हैं तो एक और गाथा हमको मिलती है उस गाथा में हमको मिलता है। "चदुगदि भव्वो सण्णी, यह कार्तिकेय अनुप्रेक्षा ग्रंथ की गाथा है।

चदुगदि-भव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाण-पज्जत्तो ।
संसार-तडे णियदो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥307॥

अर्थात् :- चारों गति का भव्य, संज्ञी, विशुद्धपरिणामी, जागता हुआ, पर्याप्त, ज्ञानी जीव संसार तट के निकट आने पर सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

इन दोनों गाथाओं के प्रथम चरण की हमें तुलना करना है। इससे हमें ये स्पष्ट होता है कि कौन सी गाथा में ये योग्यता स्पष्ट रूप से बताई गई है कि हम प्रथमोशम के योग्य किस जीव को बैठायें।

चहुगदि भव्वो कहते हैं तो हमारे लिये यह स्पष्ट हो जाता है कि भव्य जीव के लिये ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता है भले ही यह गाथा कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में है और लब्धिसार ग्रन्थ में मिच्छो शब्द है। हमारे अनुसार मिथ्यात्व की अपेक्षा यह भव्य शब्द स्पष्ट और अच्छा प्रतीत होता है।

जिसके माध्यम से हम प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता को समझ सकते हैं। दूसरी बात, इसमें एक शब्द और आता है गर्भज यह शब्द भी हमें बहुत संकुचित कर देता है अगर हम यह कहें कि यहाँ पर मनुष्यों और तिर्यंचों की अपेक्षा योग्यता बताई जा रही है तब तो यह गर्भज शब्द उपयुक्त है और यह कहें कि चारों गति के जीव की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि की योग्यता बताई जा रही है तो क्या यहाँ गर्भज शब्द उपयुक्त होगा? प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन सम्मूर्च्छन जीवों को नहीं होता है यह नियम है। इसमें कहीं कोई बाधा नहीं

तो क्या उपपाद जन्म वाले जीवों को नहीं हो सकता और यदि हो सकता फिर इस गाथा में आया हुआ गर्भज शब्द थोड़ा सा खटकता है। या तो यह कहें कि यह सिर्फ तिर्यंचों और मनुष्यों को पढ़ाने के लिये है तो ठीक है। यदि प्रथमोशुभ सम्यग्दर्शन की योग्यता चारों गति जीवों को बताने के लिये कह रहे हैं तो फिर हमें यहाँ पर गर्भज की condition बताने को कोई आवश्यक्ता नहीं है। अगर हम इसकी अपेक्षा कार्तिकेय अनुप्रेक्षा की गाथा का वो पाठ ले आते है चदुगदि भव्वो तो समाधान हो जाता है।

यहाँ पर भी वह यह बातें हैं लेकिन इसमें गर्भज शब्द नहीं रखा है। यह आपके लिये एक शोध का विषय भी है। मनन करना, चिंतन करना और यदि कोई पी.एच.डी. करने वाले आपके पास आ जायें तो शोध करने के लिये भी आपको विषय देने पड़ते है ये भी एक शोध का विषय है। हमें इन ग्रंथों का अध्ययन और चिंतन करना चाहिये जिसके माध्यम से कभी हो सकता है भविष्य में हम पांडुलिपियाँ देखें तो ये भी मिले की कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में जो गाथा है वह ज्यादा उपयुक्त है। ये भी हमें कहीं पर उपलब्ध हो सकता है क्योंकि इसमें चारों गति के जीव के सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने में योग्यता जो आनी चाहिये वो सब हमको उपलब्ध होती है। अगर केवल मनुष्य के लिये कह रहे हैं तो ये गर्भज कहना हमारे लिये पर्याप्त है। तिर्यंच के लिये भी गर्भज कहना उपयुक्त है। यह एक गाथा जो लब्धिसार ग्रंथ में लब्धियों के वर्णन करने के लिये आई है हम समझते हैं कि यह भी हमारे लिये काललब्धि को बताने वाली गाथा है। क्या समझे? यहां पर भी क्या बताया जा रहा है? ये काल लब्धि बताई जा रही है। जब तक तुम्हें उस अभव्य और भव्य दोनों प्रकार की राशियों में से भव्य संज्ञा की प्राप्ति नहीं होगी और उस भव्य राशि में भी तुम्हारे लिये व्यवहार राशि में आकर ये संज्ञी पञ्चेन्द्रियपन प्राप्त नहीं होगा तब तक तुम्हारे लिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी। यह भी हमारे लिये एक काल लब्धि है और ये काल लब्धि की ओर आगे से नहीं चलना पीछे से चलना (सुन रहे हो)। पीछे से, भवापेक्षया काल लब्धि और भव की अपेक्षा जो काल लब्धि बताई जाती है तो उसमें क्या आता है? तो उसमें वहीं शर्तें कि वह भव्य हो, संज्ञी हो, पर्याप्तक हो, विशुद्ध हो, जाग्रत हो, साकार उपयोग से सहित हो। मतलब यह हुआ जो हमारे लिये बाहरी उपलब्धि है कि हमें कौन सी पर्याय चाहिये?

कौन सी पर्याय में कौन सी योग्यता चाहिये? ये सब हमारे लिये काल लब्धि के रूप में है। इसको पूज्यपाद आचार्य ने अपरा काललब्धि के माध्यम से कहा, वस्तुतः यह पहली काल लब्धि है। जिसके होने पर हम सम्यग्दर्शन के निकट पहुँच सकते वह पहली काल लब्धि है। अब इस काल लब्धि में हमारे सामने जब ये भव्य शब्द आ जाता है तो हम इस भव्य शब्द पर भी थोड़ा विचार करें कि जो भव्य जीव होंगे उन्हीं के लिये यह काल लब्धि मिलती है या अभव्यों को भी मिलती है। ये तो सबके लिये सामान्य है अभव्यों को भी प्राप्त हो जाती है लेकिन भव्यों में भी कई प्रकार के भव्य जीव हैं। निकट-भव्य, दूर भव्य, दूरानुदूर भव्य ये भी भव्य जीव हैं। उनमें दूरानुदूर भव्य होते हैं वह तो नियम से निगोद पर्याय में ही रहते हैं उन्हें कभी भी यह योग्यता नहीं मिलती कि वह कभी भी व्यवहार राशि में आ सकें इसलिये दूरानुदूर भव्य की कोई चर्चा नहीं। उन दूरानुदूर भव्य को अभव्य के समान कहा गया है। अभव्य जीव के समान भव्य जीव जो दूरानुदूर भव्य जीव है वह नियम से कहाँ रहते हैं तो वह निगोद पर्याय में ही रहते हैं ऐसा भी एक नियम है। जयधवल ग्रंथों से जो प्ररूपणा मिलती है उनसे समझ में आता है कि ये जीव दूरानुदूर भव्य के रूप में उसी पर्याय में रहते हैं। उन्हें कभी भी ऐसे निमित्त ही नहीं मिलेंगे कि वो सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकें। भव्य तो हैं लेकिन भव्य होने के बाद भी उन्हें कभी निमित्त नहीं मिलेंगे और निमित्त न मिलने की वजह से उन्हें अभव्य समान भव्य दूरानुदूर भव्य कहा गया है। अब आप यह सोचें, छह महिने 8 समय में जो 608 जीव निकलते हैं वो जीव कौन से होते हैं छह महिने आठ समय में जो छह सौ आठ जीव जो निगोद राशि से व्यवहार राशि में आते है वो जीव भव्य जीव भी होते हैं और उनमें अभव्य जीव भी हो सकते हैं।

आचार्य अकलंक महाराज ने राजवार्तिक में एक वार्तिक दी है

केचित् संख्येयकालेन स्येत्सन्ति केचित् असंख्येयकालेन स्येत्सन्ति
केचित् अनंतकालेन स्येत्सन्ति केचित्
अनंतानंत कालेनाऽपि न स्येत्सन्ति।

यानि कुछ संख्यात काल में सिद्ध हो जाते हैं, संख्यात भवों में सिद्ध हो जाते हैं। कुछ असंख्यात भवों में सिद्ध हो जाते हैं, कुछ अनंतभव में सिद्ध

हो जाते हैं और कुछ अनंतानंत काल के बाद भी सिद्ध नहीं होते हैं। जो अनंतानंत काल के बाद भी सिद्ध नहीं होते हैं ये कहलाये दूरानुदूर भव्य जीव। निकट भव्य में कौन आ गया? जो संख्यात काल के बाद सिद्ध हो गये और असंख्यात काल के बाद सिद्ध हो गये। असंख्यात काल के बाद सिद्ध हो गये वे निकट भव्य क्योंकि आपको देव पर्याय मिली वहाँ पर भी आपको असंख्यात वर्ष का समय लग गया, सागरोपम की आयु वहां बताई लेकिन फिर भी वह निकट भव्य कहलायेगा। उस निकट की अपेक्षा ये संख्यात और असंख्यात समय हैं अनंत काल दूर भव्य की अपेक्षा से जो अनंतकाल के बाद सिद्ध होगा। दूरानुदूर भव्य अनंतानंत भव में भी सिद्ध नहीं होते इससे भी यह सिद्ध होता है कि अनंतानंत काल में सिद्ध नहीं होने वाले दूरानुदूर भव्यों की चर्चा आचार्यों के सामने थी। अब इसमें जो अभव्य जीव हैं उन अभव्य जीवों को अंध पाषाण के समान उपमा दी गई है। उन अंध पाषाण में से कभी भी स्वर्ण नहीं निकल सकता है। उस प्रकार से उन दूरानुदूर भव्य जीवों को कभी भी निमित्त नहीं मिलेगा। अभव्य जीवों को निमित्त तो मिलेगा लेकिन उनके अंदर वह योग्यता जाग्रत नहीं होगी लेकिन अभव्य समान जो भव्य जीव हैं उनको कभी निमित की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिये भव्य जीवों को ही सम्यग्दर्शन की योग्यता है। यह विचार यहाँ पर स्पष्ट होता है इस गाथा में आये हुये मिथ्यात्व शब्द से हमें भव्य मिथ्यादृष्टि जीव को लेना।

आगे अब हमारे सामने एक गर्भज शब्द आ जाता है उसके बारे में भी हमने आपको बताया और एक विशुद्ध शब्द आ रहा है। विशुद्ध का अर्थ क्या? विशुद्धि लब्धि नहीं। विशुद्ध का अर्थ है कि वह अभी विशुद्ध होता जा रहा है।

1. क्षयोपशम लब्धि

प्रतिसमयं अनंतगुण विशुद्धया वर्धमान प्रतिसमय वह अनंत गुणी विशुद्धि से वर्धमान हुआ क्या करता है जब वह कर्म मल पटल को और उनकी अनुभाग शक्ति को हीन करता चला जाता है तब उसके लिये पहली **क्षायो-पशमिक लब्धि** प्राप्त होती है। कर्म मल पटल में सामान्य रूप से सभी कर्मों की शक्ति को लिया गया है और सभी कर्मों की अनुभाग शक्ति को अनंतगु-णा, अनंतगुणा हीन प्रतिसमय करता चला जायेगा। उस समय उसके लिये यह क्षायोपशमिक लब्धि की प्राप्ति होगी और इस क्षायोपशमिक लब्धि को प्राप्त होने पर उनके मन में क्या आयेगा? तो आचार्य कहते है कि गुण और दोष की विचार करने की क्षमता क्षायोपशमिक लब्धि के प्राप्त होने पर होती है। कौन से गुण और दोष? लौकिक जीवन में होने वाले गुण और दोष की विचार करने की क्षमता क्षायोपशमिक लब्धि को प्राप्त होने पर होती है, ऐसा नहीं किन्तु जो हमें बंध और मोक्ष, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यात्व इनके गुण और दोषों के बारे में हमारे अंदर जो ज्ञान उत्पन्न होगा तो वह किससे होगा तो वह क्षायोपशमिक लब्धि के माध्यम से होगा जो हमें तत्वार्थ श्रद्धान की योग्यता के रूप में हमारे सामने आयेगा।

ये क्षायोपशमिक लब्धि भी हमारे लिये एक काल लब्धि के रूप में है। क्या कहा भले ही आचार्यों ने इसे नई काल लब्धि का रूप नहीं दिया है लेकिन हम इसको भी काल लब्धि कह सकते हैं क्योंकि विशुद्धि हमारा पुरुषार्थ है और उस विशुद्धि से होने वाला जो कार्य है जो अनंतगुणी उस प्रतिसमय अनुभाग में कमी आ रही है यह उसके लिये एक काल लब्धि हो जाती है। हम इस तरह से विचार करें कि जो सर्वार्थसिद्धि में भवापेक्षा जो एक काल लब्धि कही थी वो काल लब्धि **'चदुगदि सण्णी'** इस गाथा में के रूप में दी है। दूसरी काल लब्धि कर्म स्थिति का काल लब्धि दी है वो कौन सी काल लब्धि है? तो आचार्य महाराज ने वहां पर क्षयोपशम के बाद विशुद्ध लब्धि कही है। विशुद्ध के बाद देशना लब्धि और देशना के बाद प्रायोग्य लब्धि है। वहाँ पर दूसरी लब्धि को प्रायोग्य लब्धि के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। आपने विचार किया कि प्रायोग्य लब्धि में जब कर्मों की जघन्य या उत्कृष्ट स्थिती होगी तो सम्यग्दर्शन की योग्यता नहीं होगी यही शर्त आती है तो ये

भी हमारे लिये दूसरी काल लब्धि प्रायोग्यलब्धि के रूप में आ गई।

काल लब्धि जो वहाँ पर कह रहे हैं **अर्ध पुद्गल परिवर्तन आख्ये काले अवशिष्टे** तो वहाँ पर काल की मुख्यता की अपेक्षा से काल को हम प्रधान बनाकर चल रहे हैं इस अपेक्षा से वहाँ पर उन्हें कहना पड़ रहा है कि जब अर्ध पुद्गल परिवर्तन काल बचेगा वो तुम्हारे लिये सम्यक्त्व की प्राप्ति की योग्यता होगी। अगर हम उस काल लब्धि को इसी रूप में देखे पुरुषार्थ के रूप में जो करण लब्धि की ओर जा रहा है तो आचार्य कहते हैं कि **तिण्णि करणाणि काऊण पढमोवसमं गिण्हदि** जब वह जीव तीनों करण करके प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन को ग्रहण करता तो उसके प्रथम समय में अनंत संसार छेद देता है **(अणतो संसारो छिपणो)** और अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन मात्र संसार को कर देता है। कदो का मतलब वह उसके द्वारा किया गया, वह किसके द्वारा किया गया? तो उस जीवात्मा के द्वारा किन परिणामों से किया गया? तो उन तीन करणों के माध्यम से। वो उसके तीन करण उसी के माध्यम से किया गया तो यह प्रक्रिया हमें बताती है कि अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल बचने के बाद सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने के बाद अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल बचता है ये उसका सही तरीका है। काल लब्धि हमने कहा, काल के ऊपर हमने आरोप दिया कि ये काल जब बचेगा वह सम्यग्दर्शन की योग्यता होगी वह सम्यग्दर्शन की योग्यता जो तीन करणो का पुरुषार्थ कर रही हैं उसके अंदर होगी। करण पुरुषार्थ के माध्यम से हमारे अंदर सम्यग्दर्शन होगा और जो काल बच जाता तो आचार्य महाराज ने वहां "इयं एका काल लब्धि:' ऐसा कहा है वस्तुतः हमें समझना चाहिये मुख्य और गौण, पुरुषार्थ और कर्म। जिसे हम दैव कहते है जब हमारे सामने काल लब्धि के रूप में जब दैव आ जाता है तो हम इस तरह से कहते कि इतना काल होने पर यह काम होगा इस समय पर यह काम होगा लेकिन जब हम अपने पुरुषार्थ की ओर देखते हैं तो ये कहा जाता है कि जब हम पुरुषार्थ करेंगे तो इस समय पर करेंगे इसलिये पुरुषार्थ हमारा इस समय हुआ वह समय है। उस समय वहाँ पर काल लब्धि के रूप में हो गया। वस्तुतः काललब्धि जैसी कोई चीज नहीं है जो हमारे अंदर रहती है। इसी को बोलते हैं Ability क्या समझे? हम किसी कार्य को करने के योग्य है ये Ability हमारे अंदर है लेकिन एक चीज और होती है उसे बोलते है Capability. एक Ability और

दूसरी Capability. एक Able होना और एक Capable होना Able तो सब हैं जितने भव्य जीव है सब Able हैं Capable सब नहीं हैं। जब वे होंगे तब तीन करण परिणाम के माध्यम से होंगे जब करण लब्धि तक पहुंचेगे तो वे Capable कहलायेंगे। उस समय उनकी जो योग्यता उभर कर आयेगी वह योग्यता उन्हें मुख्य रूप से उस अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल को बनाने के लिये कारण बनेगी। आचार्य वीरसेन महाराज जी ने धवल आदि ग्रन्थों में सर्वत्र यही कहा है कि अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल जीव के द्वारा किया जाता है "कीरदे" इस शब्द का भी प्रयोग करते है "कदो" यानि कि वह किया गया, यानि जीव के द्वारा अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल हो गया जब उसने प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर ली। अपने आप वह अर्द्धपुद्गल काल होने पर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है ऐसा किन्हीं भी आचार्य के द्वारा नहीं कहा गया है। इसलिये अपनी भावनाओं को और अपने इस ज्ञान को चिंतन-मनन के साथ भी काल लब्धि को भी देखना। वह भी स्वीकारना जो लिखा है। वह सत्य कथन है। पुरुषार्थ की अपेक्षा हम देखते हैं तो जीव के लिये ये पाँच लब्धियाँ आ जाती हैं वहाँ पर अलग से कोई काल लब्धि नहीं बताई। हम यदि देखें तो इन पांचों में ही तीन काल लब्धि गर्भित हैं। ये हम आपकी शुरु से भूमिका बना रहे हैं- **काल लब्धि आप अलग से कोई चर्चा ही मत करो पांचों लब्धियों में ही ये तीनों काल लब्धि गर्भित है।**

पहली लब्धि जो चहुगति मिच्छो ये हो गई उसी के लिए सर्वार्थसिद्धी में जो क्रम दिया है उसमें अंतिम क्रम दिया है। उसमें अंतिम क्रम में पहली लब्धि आयेगी दूसरी लब्धि में वह प्रायोग्य लब्धि आयेगी और तीसरी लब्धि जो करण लब्धि की ओर कहना चाह रहे हैं। अगर हम इस तरह इसका समाधान करते हैं तो हमारे लिये सिद्धांत से भी बाधा नहीं आती और आचार्यों के अभिप्राय में भी बाधा नहीं आती है। यह एक बहुत अच्छा मनन है। इस मनन के माध्यम से हमारे अंदर ये मनन उत्पन्न हुआ है। सुन रहे हो! इसका श्रेय किसको जायेगा इन मनन वालों को भी जायेगा क्योंकि उससे पहले हमारे मन में ऐसा मनन हुआ ही नहीं। आपके मनन के माध्यम से ये मनन हमारे अंदर आया। यह विचार हमारे अंदर पहले भी रहता था कि काल लब्धि को हम इनमें किस तरह घटित करे और जब हमने लब्धिसार ग्रंथ में इस प्रकार से वर्णन देखा तो अपने आप ये भाव अंदर आया कि ये काल

लब्धियां इन पांचों लब्धियों में गर्भित है। अलग से कोई भी काल लब्धि नहीं होती। वह काललब्धि एक कार्य को नापने का एक माध्यम है। देखो जैसे थर्मामीटर होता है तो बताओ बुखार किसको आता है? थर्मामीटर को या आदमी को? बताओ पीछे बैठे हुये व्यक्तियों थोड़ा आप लोगों से भी पूछ ले बुखार किसको आता है? देखो! आप आदमी को देखते हो या थर्मामीटर में देखते हो? 98 है 99 है 100 है किसमें देख रहे हैं। हम थर्मामीटर में देख रहे हैं तो बुखार किसको हुआ, थर्मामीटर को नहीं तो बुखार किसको? जिनको थर्मामीटर लगाया उसको। तो यह तो एक माध्यम है न कि थर्मा-मीटर में बुखार है उसी तरह आत्मा के अन्दर जो करण परिणाम उत्पन्न होते हैं उससे उस आत्मा के अन्दर सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद में कितना काल रह जाता उसको मापने का माध्यम है। अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल वह हमारे लिए काललब्धि थर्मामीटर के रूप में है। न कि वह काललब्धि हमें ये बता रही है कि इतना काल रहने पर हमारे अंदर ये परिवर्तन होगा, ऐसी नियामकता नहीं है। यदि ये नियामकता हो जायेगी तो ये जीव पुरुषार्थ करना ही छोड़ देगा और काललब्धि को ही बैठे देखता रहेगा। काललब्धि को जो बैठे देख रहे हैं तो अनन्तकाल बीत गया तब उन्हें काललब्धि नहीं मिली और इतनी सब योग्यता प्राप्त कर ली।

मनुष्य हो गये, गर्भज हो गये, विशुद्धि भी है लेकिन फिर भी हम काल लब्धि बैठे हुये देखेंगे तो हमारे लिए करण लब्धि तक पहुंचने का सौभाग्य नहीं मिलेगा। ये जितनी भी लब्धियां हैं अंतरंग पुरुषार्थ को बताने वाली है और ये जो काल लब्धि कही जाती है वह केवल हमारे लिये सूचना देती है थर्मामीटर की तरह कि बस अब इसमें इतना काम हो गया यानि इसके अंदर इतनी योग्यता आ गई। लब्धि का मतलब क्या है? एक तरह से योग्यता है। योग्यता को बढ़ाते चले जाना बाहरी योग्यता भी और अंतरंग योग्यता भी। सबसे पहले ये बाहरी योग्यता चाहिये कि भव्य हो, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक ये बाहरी योग्यता उसके बाद अंतरंग योग्यता है जिसमें कर्मों के अनुभाग प्रति समय अनंतगुणा हीन होकर के उदीरणा को प्राप्त होते जाये और उसके माध्यम से आत्मा के परिणामों में इतनी विशुद्धि उत्पन्न हो जाये कि वह सम्यग्दर्शन तत्वार्थ श्रद्धान इन सबके उपयोग में अपने ज्ञान को लगा दे तो वह उसकी क्षयोपशम लब्धि कहलाती है। जिस क्षयोपशम

के माध्यम से तत्त्व ज्ञान के प्रति विचार करने की भावना उत्पन्न हो जाती है उसका नाम है क्षयोपशम लब्धि। इस क्षयोपशम लब्धि के होने पर ही आगे ये और लब्धियाँ होगी लेकिन ये क्षयोपशम लब्धि थोड़ी देर के लिए होकर रह गई फिर छूट गई उससे काम होने वाला नहीं। इनमें एक बात और है क्षयोपशम लब्धि के बाद में वह क्रमशः विशुद्धि आदि लब्धियों हो और वह हमारी विशुद्धि बढ़ती रहे तब जाकर के हमारे लिये वह करण लब्धि के माध्यम से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। आपने थोड़ा सा क्षयोपशम प्राप्त किया थोड़ा सा आपने सम्यग्दर्शन पाठ पढ़ लिया, मिथ्यादर्शन पढ़ लिया और आपने छोड़ दिया। आपने फिर कभी उसके माध्यम से विशुद्धि बढ़ाने का प्रयास नहीं किया तो करण लब्धि तक तो सब पहुँच सकते हैं। वहाँ तक पहुँचने के लिये सबकी सामान्य गति है लेकिन उसे पहले हमारी जो विशुद्धि आवश्यक है वो विशुद्धि वर्द्धमान हो। ये वो क्रिया है जो वर्द्ध-मान विशुद्धि के बिना नहीं बनती और उस वर्द्धमान विशुद्धि के साथ ही ये विशुद्धि लब्धि आने वाली है। इसकी बात आपसे बाद में कहेंगे। पहले ये क्षयोपशम लब्धि में ही इतनी विशुद्धि है कि यहाँ पर जो विशुद्ध शब्द दिया है, जाग्रत शब्द दिया है वो इसलिये ही दिया है कि हम कभी भी सोते हुये सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं कर सकते। तीन प्रकार की जो निद्रायें है वो तो होनी ही नहीं चाहिये- निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि। अभी बची दो निद्रायें तो दो निद्राओं का उदय तो हो सकता है लेकिन उनका कार्य नहीं होना। निद्रा, प्रचला के उदय में सम्यग्दर्शन तो हो सकता है लेकिन उदय का कार्य नहीं होना। उदय होना और उदय का कार्य होना इन दोनों में अंतर है। निद्रा, प्रचला का उदय हमारे लिये अभी भी चल रहा है। वो ध्रुवोदयी है लेकिन उस उदय में हमें नींद आये जरूरी नहीं है। उस निद्रा के साथ में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिये आचार्य महाराज ने एक शब्द और दिया सागारो यानि की वह निद्रा से रहित तो हो ही। निद्रा और प्रचला का अगर उदय भी चल रहा हो तो भी साकार होना। ज्ञानोपयोग जाग्रत होना जग्गमाण विसुद्धो इसलिये वहाँ पर उसने एक शब्द दिया जाग्रत होना। यहाँ तो शब्द दिया है साकार होना और जो दूसरी गाथा बताई थी कार्तिकेयअनुप्रेक्षा की उसमें जग्गमान यांति जाग्रत होना भीतर से निद्रा का उदय हो। बाहर से जाग्रत होना चाहिये झपकी लेते समय आपके लिये

सम्यग्दर्शन नहीं होगा। उपयोग बिल्कुल साकार। जो हमारे सामने आकृति खींची जा रही है लब्धियों की, उस आकृति में हमारा आकार बिल्कुल touch में हो तब साकार उपयोग के साथ में क्षयोपशम लब्धि आदि होती चली जाती है। सम्यग्दर्शन की योग्यता बनती चली जाती है। इन गाथाओं के माध्यम से हमे समझ में आता है कि जो पंचलब्धियों के लिये प्रारंभ में गाथा दी गई है और जो कार्तिकेयअनुप्रेक्षा की गाथा है उसमें आप तुलना करें और उसके विषय में चितन करें और जो काल लब्धियां तीन प्रकार की सवार्थसिद्धि में बताई है इनको इन्हीं पांच लब्धियों में Include करें। आगे हमारे लिये कोई भ्रम पैदा न हो कि काललब्धि अलग है और ये पंचलब्धियां अलग है ये मनन के पहले सत्र का हमारे लिये एक उपदेश छोटा सा हुआ जिसके माध्यम से हम क्षयोपशम लब्धि को समझ सके। काल लब्धि को एक अलग से एक नया हऊआ न बनाये ये हमारे कहने का मतलब है ताकि इन पंच लब्धियों से हम सम्यग्दर्शन को प्राप्ति की योग्यता सबको समझा सके। काल लब्धि कुछ अलग नहीं बनायेंगे, नहीं तो वह दूसरे लोगों को एक नियतिवाद का रुप बनता चला जा रहा है जो हमारे लिये एक हानि-कारक सिद्ध हो रहा है इस तरह यह व्याख्यान समाप्त होता है।

शंका-समाधान(क्षयोपशम लब्धि)

शंका- जीव के स्वभाव और कर्म के स्वभाव में समन्वय कैसे समझ सकते हैं?

समाधान- कर्म के साथ में भी वस्तु की स्वतन्त्रता बनी रहती है क्योंकि कर्म का स्वभाव कर्म के रूप में ही रहता है और जीव का जो स्वभाव है वह जीव के ही स्वभाव के रूप में रहता है। बन्ध होने के साथ साथ भी कभी भी जीव ने अपना स्वभाव छोड़ा नहीं, जीव का जो ज्ञान स्वभाव है, दर्शन स्वभाव है वह तो बना ही हुआ है। वह उसकी स्वतन्त्रता है लेकिन उस ज्ञान स्वभाव को जो बांध रखा है कर्म ने, हम उस परतन्त्रता को भी देखें। जब हम इन दोनों स्वभावों को देखेंगे तो हमें दोनों चीजें स्वतन्त्र नजर आयेंगी। कर्म भी स्वतन्त्र समझ आयेगा और जीव का स्वभाव भी हमें स्वतन्त्र नजर आयेगा। इस तरह से हम दोनों के स्वभाव को देख करके उनमें समन्वय घटित कर लेते हैं।

शंका– निश्चयनय और व्यवहार नय में आपस में मैत्री भाव है फिर चतुर्थ गुणस्थान में रहने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि, निश्चय सम्यग्दृष्टि है या व्यवहार सम्यग्दृष्टि है?

समाधान– देखो, चतुर्थ गुणस्थान में रहने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वह निश्चय सम्यग्दृष्टि इस अपेक्षा से है कि उसने निश्चय से सात कर्मों का क्षय कर दिया। क्या सुना? अनन्तानुबंधी और मिथ्यात्व आदि सात कर्मों का उसने निश्चय से क्षय कर दिया। इसलिये वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। समझ आ गया? और व्यवहार से सम्यग्दृष्टि इसलिये है कि अभी चतुर्थ गुणस्थान में उसे आत्मा का आत्मा में अवस्थान नहीं हो रहा है। आत्मा का, आत्मा के रूप से ही उसे सम्यक्त्व के माध्यम से प्रतीति रूप नहीं हो रहा है। अभी वह व्यवहार रूप श्रद्धान, सात तत्वों के श्रद्धान में वह उलझा है, इसलिये वह व्यवहार सम्यग्दृष्टि है यानि जब तक वह शुद्धोपयोग में परिणत नहीं होगा, तब तक वह व्यवहार सम्यग्दृष्टि है और उसी समय पर यदि आप निश्चय की मैत्री बनाते हो तो कर्मक्षय की अपेक्षा से वह निश्चयनय से सम्यग्दृष्टि है।

विवक्षा में अन्तर समझना। अनेकान्त दर्शन में कोई चीज हम घटित, किसी भी वस्तु के अन्दर कर सकते हैं। बस हमें विवक्षा से कहना आना चाहिये।

अनुभूति चारित्र का विषय बनेगी इसलिये अनुभूति निश्चय में होती है और यहाँ पर जो हम निश्चय की अपेक्षा लगा रहे हैं, वह निश्चित हो गया कि उसके अन्दर सात प्रकृतियों का क्षय है। इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है।

शंका– जो एक निश्चय सम्यग्दर्शन कहा गया है, वह फिर कैसे घटित होगा?

समाधान– पर द्रव्य से भिन्न आप में रुचि, माने अपनी आत्मा में ही वह श्रद्धान रूप जब उसकी परिणति आती है तो वह अपनी ही आत्मा की श्रद्धानात्मक परिणति शुद्धोपयोग में आती है। उससे पहले उसकी ज्ञानात्मक परिणति रहती है।

भावना का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है। भावना तो करना शुद्धआत्मा की, निश्चय से आत्मा के शुद्ध स्वभाव की भावना करना लेकिन उसे निश्चय सम्यग्दर्शन मानने की भूल मत करना।

हमने जितने कर्मों का क्षयोपशम कर लिया, इस अपेक्षा से निश्चय है। विवक्षा देखो, वह निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं जो अनुभूति आत्मक है, वह नहीं। दूसरा निश्चय सम्यग्दर्शन बता दिया आपको।

शंका- निश्चयनय को भूतार्थ और व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा जाता है, इसका क्या अभिप्राय है?

समाधान- इसका ये अभिप्राय है कि हम उस व्यवहार को छोड़ते चले जाते हैं। जैसे-जैसे हमें निश्चय की प्राप्ति होती चली जाती है, व्यवहार हमसे छूटता चला जाता है। इसलिये वह व्यवहार अभूतार्थ कहलाता है। यानि निश्चय से आत्मा के स्वरुप की प्राप्ति के समय पर व्यवहार हमसे छूट जाता है इसलिये उस व्यवहार को अभूतार्थ कहा जाता है। हमेशा नहीं।

शंका- उपशान्त करण क्या सभी कर्मों का होता है?

समाधान- हाँ सभी कर्मों का होता है।

शंका- उपशान्तकरण और औपशमिक भाव में अन्तर बताइये?

समाधान- बहुत अन्तर है। उपशान्तकरण में तो कर्म केवल उपशमन को प्राप्त हुआ है। इसमें भी दो प्रकार की उपशामना होती है- प्रशस्त उपशामना और अप्रशस्त उपशामना। तो करण के माध्यम से जो उपशमन किया जाता है, मोहनीय कर्म का, वह प्रशस्त उपशामना कहलाती है। अन्य कर्मों में जो इस प्रकार से, उपशान्तकरण के योग्य जो स्थिति पड़ी है। वह अप्रशस्त उपशामना कहलायेगी। जो हमेशा-हमेशा उस कर्म में पड़ी रहती है। उस कर्म के उपशान्त करण होने पर आत्मा में औपशमिक भाव प्रकट नहीं होगा लेकिन उपशमन करण होने पर, आत्मा में मोहनीय का उपशमन होने पर, औपशमिक भाव प्रकट होगा। यह उसका अन्तर है।

शंका– मुनि महाराज कौन से निधत्ति निकाचित रूप कर्मों का बन्ध करते हैं?

समाधान– ये तो प्रत्येक कर्म में स्वभाव है। सभी कर्म जो बन्ध को प्राप्त होते हैं, उनमें कुछ न कुछ, जैसे बोलते है न हर घर में, हर परिवार में एक न एक आदमी ऐसा मिल जायेगा जिसकी गति अलग रहती है।

शंका– अपकर्षण, उत्कर्षण द्वारा फल देने वाले कर्मों का क्या उदय नहीं होता?

समाधान– उदय तो होगा। जो कर्म अपकर्षण को प्राप्त हो गये उसका भी उदय होगा और जो कर्म उत्कर्षण को प्राप्त हो गये उनका भी उदय होगा। बिना उदय के कर्म का अभाव कैसे होगा? उदय तो सभी का होता है।

शंका– बन्ध के समय को सत्व का समय मानने में क्या बाधा है?

समाधान– बाधा नहीं है। ये एक विविक्षागत अभिप्राय है। बाधायें कुछ भी नहीं है। बन्ध के समय को सत्व का समय नहीं माना गया है। क्या कह रहे हैं? ये प्रश्न ही अलग हो गया। बन्ध के समय को सत्व का समय नहीं, बन्ध का समय छोड़ करके सत्व होगा क्योंकि बन्ध के समय पर वही सत्व नहीं हुआ, बन्ध के समय पर तो केवल उसका बन्ध हुआ। एक समयगत बन्ध उसके बाद वह सत्व के रूप में आत्मा में स्थित हो गया।

उसी समय सत्ता में नहीं हुआ। समय में भेद बढ़ता है, जो हमने आपको बताया, सत्ता में भी उसकी स्थिति उस समय-भेद के साथ चलती है। देखो, बन्धावली के साथ में दो समय कम भी लिखा मिलता है। क्या कहा? बन्ध होने के बाद कर्म का जब उदय आयेगा तो वह कम से कम, दो समय कम बन्धावली प्रमाण उसका काल बीतने पर होगा।

वह दो समय कौन से, एक बन्ध का समय और एक उदय का समय। सुनो, मतलब बन्ध का समय वह किसमें गया, वह कम हो गया। एक बन्ध का समय और एक उदय का समय कम हो गया और बन्धावली कम हो गयी, उसके बाद में वह उदय में आया। यह उसकी निषेक की स्थिति में ही ये

प्रक्रिया पड़ती है और उसी स्थिति के अनुसार उस कर्म का बन्ध होता है। एक समय कम करके।

शंका– “ववहारो अभूदत्थो” यहाँ तो व्यवहार को अभूतार्थ-यथार्थ कहा, इस गाथा से व्यवहारनय उस वस्तु तत्व का कथन करता है तो यथार्थ सही में है या नही। क्या ऐसा अर्थ नहीं है?

समाधान– देखो, अभूतार्थ के भी दो अर्थ किये जाते हैं। ‘अ’ माने ईषत् भूतार्थ, जैसे आपके लिये अकषाय। कषाय और अकषाय। जो नौ कषाय कहीं जाती हैं उनको ईषत् कषाय कहा जाता है। उसी प्रकार से अभूतार्थनय में भी ईषत् भूतार्थपना है। यानि कि वह भी हमारे लिये प्रयोजनीय है। उसके माध्यम से भी वस्तु तत्व का ज्ञान होता है। अभूतार्थ कहते हुए भी उसको वहाँ झूठा नहीं कहा, जैसे आजकल लोग उसका अर्थ निकालते हैं। अभूतार्थ कहना अलग और असत्य कहना, झूठा कहना अलग। वह अभूतार्थ होने का मतलब है- कि जो वस्तु का स्वरूप भूत अर्थ माने जिस रूप में विद्यमान है, उस रूप में वह वस्तु का स्वरूप नहीं बता रहे। इसलिये वह अभूतार्थ है। मानो आत्मा कर्म से बन्ध हो गई, अब वह आत्मा को कैसा बतायेगा? कर्म से बंधा हुआ बतायेगा और हम क्या चाह रहे हैं, आत्मा तो अपना कर्म से रहित स्वभाव वाला है तो ये कहेगा निश्चयनय और अभूतार्थ, व्यवहारनय क्या कहेगा? नहीं आत्मा कर्म से बंधा हुआ है क्योंकि वह दो प्रकार के द्रव्यों के स्वभाव को बदलकर बता रहा है और उसको व्यवहार रूप में बता रहा है इसलिये उसको अभूतार्थ कहा जाता है।

यह व्यवहार नय है इसको एकान्त रूप से झूठा नहीं कहा है, असत्य नहीं कहा है। यह लोगों ने उसकी व्याख्या कर दी है, अभूतार्थ की असत्य के रूप में, लेकिन वास्तव में वह असत्य नहीं है। उसका ये शाब्दिक अर्थ भी नहीं है।

शंका– निधत्ति-निकाचित कर्म प्रभु भक्ति से नहीं कटते क्या?

समाधान– एक रेफरेन्स(Reference) आता है- ‘णिधत्तिणिकाचिदकम्मकलावस्स हि जिणबिंबदंसणेण खयदंसणादो’ यानि जिनेन्द्र भगवान के

दर्शन से निधत्ति-निकाचित कर्म का क्षय भी देखा जाता है, ये एक अपवाद है। जैसे किसी के लिये कोई सजा हो जाये फिर भी उसकी सजा माफ कर दी जाती है, अगर कोई राष्ट्रपति के पास उसे पहुँचा दिया जाये और राष्ट्रपति कह दे- नहीं भैय्या, इसको कोई सजा नहीं देना, इसको फांसी नहीं लगाना तो वह माफ हो जाती है। भले ही उसने सभी जुर्म किये लेकिन फिर भी उसके लिये माफी मिल जाती है।

इसी प्रकार से जिनेन्द्र भगवान के पास आप पहुॅंच जाओगे तो आपके भी निधत्ति-निकाचित कर्म माफ कर दिये जायेंगे।

शंका- उदीरणा और उदय में क्या अन्तर है?

समाधान- उपाय के द्वारा जो कर्म उदय में लाया जा रहा है, उसे उदीरणा कहते हैं और बिना उपाय के अपनी निषेक स्थिति से जो कर्म उदय में आ रहा है, वह उदय कहलायेगा। ये उसमें सैद्धान्तिक अन्तर है।

2. विशुद्धि लब्धि

कल आपके सामने पंच लब्धियों का वर्णन और काल लब्धि का भी वर्णन प्रस्तुत किया था। उस वर्णन को सुन करके उसका चिंतन करके हमें यह ज्ञात हुआ कि उन पंचलब्धियों में काल लब्धि समाहित है। अगर हम उस काल लब्धि को एक धागे की तरह देखे और पंच लब्धि की धागे में पिरोय मोतियों की तरह देखे तो दोनों को हम सामान्य और विशेष दोनों रूप से समझ सकते है। काल लब्धि एक सामान्य लब्धि है और ये पांच लब्धियां विशेष लब्धियां हैं। लब्धि 'का अर्थ प्राप्ति होता है। जब हम किसी चीज को प्राप्त करते हैं तो उस प्राप्ति को हम एक उपलब्धि समझते हैं उसी उपलब्धि को यहाँ लब्धि के रूप में कहा। जीवात्मा के लिये सबसे बड़ी उपलब्धियाँ जो हैं वो सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने से पहले पाँच लब्धियों की होती है और ये ही उपलब्धियों उसके लिये मोक्षमार्ग का प्रारंभ कराती हैं इन पांच लब्धियों में जो कुछ क्षयोपशम लब्धि के बारे में हमने सुना कि जीव की एक ऐसी परिणति जिसमें उसके परिणाम विशुद्ध होने लग जाते हैं और विशुद्ध होते-होते उस क्षयोपशम लब्धि में कर्मों की अनुभाग शक्ति घटने लग जाती है। जो घाति-अघाति जितने भी समस्त कर्म हैं, उन सभी कर्मों की अनुभाग शक्ति प्रतिसमय अनंतगुणाहीन होकर के उदीरणा को प्राप्त होने लगती है और इस क्षयोपशम लब्धि से जब आत्मा में ऐसा परिणाम उत्पन्न होता कि उससे उसके संक्लेश भावों में कमी आने लग जाती है। जब संक्लेश भावों में कमी आ जाती है तो उसे उस विशुद्धि का भाव उत्पन्न होता है जिस विशुद्धि के माध्यम से वह निरंतर साता, स्थिर, सुभग आदि जितनी भी शुभ प्रकृतियाँ हैं। अब उन सब शुभ प्रकृतियों को वह एकांत रूप से बांधता रहता है और उन प्रकृतियों को वह एकांत रूप से बांधता रहता है। उन प्रकृतियों को बांधने के लिये कारणभूत वह क्षयोपशम लब्धि होती है क्षयोपशम लब्धि से जो आत्मा में विशुद्धि हुई उस विशुद्धि की कार्य भूत ये विशुद्धि लब्धि अब आपके सामने आई इसलिये विशुद्धि लब्धि का वर्णन करते हुये कहा है।

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं।
सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धलद्धी सो ॥5॥ [लब्धिसार]

अर्थात्:- पहली जो क्षयोपशम लब्धि है उससे जो जीव के साता आदि प्रशस्त प्रकृति बंध करने के लिए कारणभूत धर्मानुराग रूप परिणाम होता है उसकी प्राप्ति ही विशुद्धि लब्धि है।

पहली लब्धि से उत्पन्न हुआ जो भाव है वही भाव जीव को ये साता आदि प्रकृतियों को बांधने के लिये कारणभूत बन रहा है इससे स्पष्ट होता है कि क्षयोपशम लब्धि कारण रूप है और विशुद्धि लब्धि कार्य रूप है।

वही विशुद्धि लब्धि आगे की लब्धियों के लिये कारण रूप बनेगी और आगे की आगे आने वाली लब्धि के लिये कारण भूत बनेगी। इस तरह इन पाँचों लब्धियों में कार्य-कारण की व्यवस्था घटित हो जाती है। करण लब्धि में भी कार्य-कारण की व्यवस्थायें घटित होती है जिस तरह से अधः करण कारण होता है अपूर्व करण के लिये, अपूर्व करण कारण होता है अनिवृति करण के लिये। इसी प्रकार इन लब्धियों में भी कार्य-कारण व्यवस्था घटित होती है। कोई भी लब्धि यदि हमारे लिये प्राप्त हुई है तो वह आगे की लब्धि हमें प्राप्त होगी। इस क्रम से जब हम देखते हैं तो हमें महसूस होता कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है कि यह जीव विशुद्धि को बढ़ाता हुआ इस मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। आचार्यों ने मोक्षमार्ग को एक विशुद्धि का मार्ग कहा है। शीतलनाथ भगवान की स्तुति करते हुये **समंतभद्र महाराज** कहते हैं-

न जागरेवाऽऽत्म-विशुद्ध-वर्त्मनि।

हे भगवन! आप उस विशुद्ध मार्ग पर हमेशा जाग्रत रहे और उस विशुद्ध मार्ग को आपने हमेशा-हमेशा अपनाया। उस विशुद्ध मार्ग पर चलते हुये भगवान ने उस शुद्ध अवस्था को प्राप्त किया। विशुद्ध शब्द कल जो आपको बताया था। "चदुगदि मिच्छो सण्णी" उसमें भी एक विशुद्ध शब्द आया है और ये विशुद्धि लब्धि इसमें भी विशुद्ध शब्द है, इन दोनों में अंतर है। वहाँ पर वह विशुद्ध होना प्रारंभ हुआ। उसके उस विशुद्ध भाव से कर्म पटलों का अनुभाग शक्ति अनंतगुणा हीन होना कम हुई ये यहां पर विशुद्ध शब्द से प्रारंभ हुआ। विशुद्धि के साथ ही ये प्रक्रिया प्रारंभ हुई लेकिन यहां पर जो विशुद्धि लब्धि है उसका कार्य ये है कि इस विशुद्धि लब्धि के समय पर नियम से साता आदि शुभ प्रकृतियों का ही बंध करता रहता है और इतनी

योग्यता की विशुद्धि आ जाने का नाम यहां पर विशुद्धि लब्धि के रूप में कहा गया है। इस विशुद्धि के लिये हमारे पास चेतना के जो स्तर हैं और उन चेतना के स्तर को बढ़ाने के लिये हमें जिन विशुद्धियों की जरूरत होती है वो विशुद्धियां कषाय की हानि से ही हमें प्राप्त होती हैं। जितने भी गुणस्थानों में हम ऊपर बढ़ते चले जाते हैं वो विशुद्धि के बढ़ने से ही हमें प्राप्त होते हैं। उन गुणस्थानों में कषायों की हानि होने पर विशुद्धि बढ़ती है, चेतना का स्तर बढ़ता है और वह चेतना जिसे हम कर्मचेतना, कर्मफल चेतना और ज्ञान चेतना के रूप में जानते है।

तीन चेतनायें-

जब हम तीन चेतनाओं को पढ़ते है तो हमारे मन में सबसे पहले यह विचार आता कि कर्म फल चेतना कौन से जीवों को होती है? आचार्य कहते हैं कि जब तक इस जीव के लिये ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और वीर्यान्त-राय कर्म का तीव्र आवरण रहता है तब तक इस जीव को किसी भी प्रकार की क्रिया करने का और किसी प्रकार ज्ञान अर्जित करने का भाव भी उत्पन्न नहीं होता है। यह जीव **कर्मफल चेतना** को महसूस करते हुये क्रिया भी नहीं कर पाता। वही जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मोहनीय इन तीनों कर्मों के द्वारा तो अपनी ज्ञान चेतना को तो कुंठित किये हुए है लेकिन जब उसमें वीर्यान्तराय कर्म का कुछ क्षयोपशम बढ़ जाता है तो वह हिलन-डुलन आदि करता है। इष्ट, अनिष्ट के माध्यम ये सुख दुःख को करने वाली क्रियायें और इस इष्ट, अनिष्ट के माध्यम से अपने आपको बचाने की, अपने सुख दुःख रूप परिणाम करने की जो क्रियायें होती हैं उनको करने लग जाता है उसे **कर्म चेतना** कहा है। इस जीव के अंदर सब प्रकार के ये चारों कर्मों का अभाव हो जाता है तब इसके अंदर जो चेतना उत्पन्न होती हैं उसे ज्ञान चेतना कहा है। इसी को **आचार्य कुंदकुंद** ने **पंचास्तिकाय** में कहा है-

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥३९॥ [पंचास्तिकाय]

यानि जितने भी स्थावर काय हैं वे कर्मफल चेतना का उपभोग करते हैं। जितने भी त्रस जीव हैं वे कर्म चेतना का उपभोग करते हैं। ज्ञान चेतना का

उपभोग करने वाले पाणित्तमदिकंता- यानि जो प्राणों से अतिक्रांत हो गये हैं ऐसे सिद्धभगवान अथवा केवलज्ञानी अरहंत भगवान भी हम ले सकते हैं वह ज्ञानचेतना का साक्षात् अनुभव करने वाले हैं। अब इन तीन चेतना में ज्ञान चेतना की साक्षात् अनुभूति, ज्ञान चेतना की प्राप्ति तो सिद्ध भगवान के पास है। यह पंचास्तिकाय की उस गाथा से स्पष्ट हो जाता है। बाकी के जीव कर्म चेतना का अनुभव कर रहे हैं, कर्म फल चेतना का अनुभव कर रहे हैं इस कर्म फल चेतना का अनुभव करते हुये वो अपनी किसी भी प्रकार की इष्ट-अनिष्ट क्रिया को नहीं कर सकते और जो त्रस जीव हैं वो इष्ट-अनिष्ट क्रिया के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं इसलिये वो कर्म चेतना करने वाले कहे हैं।

अध्यात्म की भाषा में तीन चेतनायें-

अब इन तीन चेतनाओं को अध्यात्म में कैसे समाहित करें? इन तीन चेतनाओं के माध्यम से हम अपना मोक्ष मार्ग कैसे बनाये? इन तीन चेतनाओं के द्वारा हम कैसे ज्ञान चेतना को प्राप्त करें यह एक प्रश्न हम सभी के सामने है, आचार्य महाराज तो इतना कहकर विराम ले लिये कि पाणित्तमदिकंता ते- जो प्राणों से अतिक्रांत है, उन्हीं के पास ज्ञान चेतना है। और हम कह रहे हैं कि ज्ञान चेतना हमारे पास भी है। महाराज! ज्ञान चेतना के बिना जीव का अस्तित्व क्या रहे? त्रिलोकभैया कह रहे थे कि ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, आत्मा ज्ञान से भिन्न हो नहीं सकता इसलिये जहाँ ज्ञान है वहीं आत्मा है। पंचास्तिकाय में ज्ञान चेतना से युक्त ज्ञान चेतना का अधिकारी केवल सिद्ध भगवान को बताया गया है। सिद्ध भगवान ही ज्ञान चेतना का अनुभव करने वाले हैं। हमारे अंदर अभी कर्म चेतना भी नहीं आई है। ज्ञान चेतना तो बहुत दूर की बात है। कर्म चेतना तब आयेगी जब हम उस कर्म को उस क्रिया को करें जो हमें ज्ञान चेतना की ओर ले जाने वाली हो। ज्ञान चेतना के लिये कारण भूत जो कर्म चेतना है उस कर्म चेतना के लिये आचार्यों ने कहा कि वह कर्म चेतना मुनिमहाराज के पास होती है। जिस क्रिया के माध्यम से हम शुभोपयोग रूप प्रवृति करते हैं जिसे हम अपनी भाषा में कर्मकाण्ड कह देते हैं क्रिया कांड कह देते हैं। वह क्रियाकांड और कर्मकाण्ड ही वह कर्म चेतना है, जो हमारे लिये ज्ञान चेतना तक ले जाने के लिये जो कारणभूत है।

अब वो चेतनायें तीन छोड़ देना जो हमने बताई। अब निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग तक पहुंचाने के लिये हम जिन तीन चेतनाओं की ओर जा रहे हैं वह कर्मफल चेतना आपको छोड़ना है। वह कर्मफल चेतना क्या है? कर्म के फल को भोगने रूप जो चेतना है वह कर्म फल चेतना है यानि हमारे अंदर सुख-दुःख का परिणाम हुआ उसी के अनुरूप हमने हर्ष-विषाद परिणाम कर लिया और उस कर्म का फल जो हमने भोगा उसके कर्म लिये पुनः कर्म का बंध कर लिया। शुभोपयोग में जितना भी कर्मकाण्ड आयेगा वह सब कर्म चेतना है। उस शुभोपयोग को छोड़ करके शुभोपयोग की समस्त बाह्य क्रिया-काण्ड, आडंबर को छोड़ करके जब वह जीव अपने आत्मा भाव में स्थित हो जाता है, अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है तो वहां से वह ज्ञान चेतना प्रारंभ होती है। उस ज्ञान चेतना को शुद्धोपयोग कहा जाता है। आप लोगों की कुछ समझ में आ रहा है? अगर नहीं भी आ रहा हो तो थोड़ा सा सुनना और ये भी विचार करना कि इस तरह की व्याख्या कभी आपने सुनी है क्या? इस तरह की व्याख्या क्या कहीं पर आचार्यों ने लिखी है कि अशु-भोपयोग को कर्मफल चेतना के रूप में कहकर छोड़ दिया हो, शुभोपयोग वृद्धि के रूप में स्वीकारा हो और उस ज्ञान चेतना का फल हमें केवलज्ञान की प्राप्ति और सिद्धत्व की प्राप्ति के रूप में हमारे सामने आया हो।

सराग, वीतराग, सम्यग्दर्शन

हम इस विषय को तब समझ सकते हैं जब हम थोड़ा सा अध्यात्म के अंदर जो आचार्यों के अभिप्राय हैं उनकी ओर चलें। **समयसार जी** ग्रंथ में एक गाथा आती है।

रागा दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥ [समयसार 177]

राग, द्वेष, मोह ये सम्यग्दृष्टि के नहीं होते हैं। उन रागद्वेष मोह के लिये कौन सा राग कौन से सम्यग्दर्शन के लिये नहीं होता, पहले हम इतना समझें, उसके बाद में आचार्यों का वह वर्णन समझ में आ जायेगा जो वो कहना चाह रहे हैं कि शुभोपयोग कहाँ से कहाँ तक है? और उसका अवस्थान क्या है? राग, द्वेष, मोह कह करके हमें कौन सा राग द्वेष मोह कौन से सम्यग्दृष्टि

के नहीं होता है? तो इसमें एक न्याय घटित किया है। वह न्याय जान पाते हैं तो अनुमान ज्ञान के माध्यम से उसमें प्रवृत्ति करते हैं। वह अनुमान ज्ञान हमारे लिये हेतुओं से पर्याप्त हो जाता है। एक पक्ष और एक हेतु, उसके लिये दो अंग पर्याप्त हो जाते हैं।

'एतद्-द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम्' (33)

ऐसा भी एक **परीक्षा मुख** का सूत्र आता है। अनुमान के दो ही अंग पर्याप्त हैं। पक्ष का मतलब होता है वह धर्मी जहाँ पर कि हम साध्य की सिद्धि करना चाहते हैं। उसको पक्ष बोलते हैं और हेतू उसको बोलते है जो साध्य के साथ में अविनाभावी संबंध को लिये हुये लेकर रहता है। जिस साधन के माध्यम से हम साध्य का ज्ञान कर लेते हैं। **साधनात् साध्य-विज्ञानं अनुमानम्।** उसी अनुमान के माध्यम से हम साध्य की सिद्धि उस पक्ष में कर लेते हैं। तो हमारे सामने दो चीजे हैं एक पक्ष और एक हेतु। अब आचार्य महोदय वहाँ पर विस्तार करते हुये गाथा में एक बहुत अच्छी वार्तिक लिखते हैं हमे वह वार्तिक जो श्री जयसेन महाराज जी की वार्तिक है उनको पढ़ना और उसी के अनुरूप अपने व्याख्यान को बनाना और उसी के अनुरूप वो व्याख्यान की पद्धति समाज में देने का प्रयास करना चाहिये। **अनंतानुबंधी-क्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न सन्ति इति पक्षः**। ये क्या हो गया? पक्ष हो गया। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ से उत्पन्न हुआ और मिथ्यात्व से उत्पन्न हुआ जो राग, द्वेष, मोह है यह सम्यग्दष्टि के नहीं होता। ये हमने पहले पक्ष बनाया। कथं इति चेत्? क्यों नहीं होता? तो आचार्य वहां पर उत्तर देते हैं कि **"चतुर्थ-गुणस्थानवर्ति-सराग-सम्यक्त्वस्य अन्यथाऽनुपपत्तेः"** और बहुत सारा मेटर है लेकिन अपन को अभी इसी हेतु से मतलब है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सराग सम्यग्दष्टि अन्यथा वह बन नहीं सकता यानि सराग सम्यग्दर्शन जो चतुर्थ गुणस्थान में है तो क्यों है? तो अनंतानुबंधी, क्रोधमानमायालोभ और मिथ्यात्व के अभाव से सराग सम्यग्दर्शन की अनुभूति उस चतुर्थ गुण-स्थान में है। ध्यान रखना! चतुर्थ गुणस्थान में सराग सम्यग्दर्शन ही होता है तो लिखते है **"अनंतानुबंधीअप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न सन्ति"**। आगे क्या बोला? अनंतानुबंधी और

अप्रत्याख्यान से उत्पन्न हुये राग, द्वेष, मोह सम्यग्दृष्टि के नहीं होते हैं। कथम् इति चेत् तो वहां पर हेतु देते हैं- **"पंचमगुणस्थानवर्तिसंयमासं-यमस्य अन्यथा अनुपपत्तेः"** अर्थात् पंचम गुणस्थान में होने वाला जो सराग सम्यक्त्व है और उसके साथ संयमासंयम भाव है उसकी अन्यथा उत्पत्ति नहीं हो सकती। फिर आगे बढ़ो-इधर ध्यान दो। **"अनंतानुबंधी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-क्रोधमानमायालोभजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न सन्ति"** एक ऐसा सम्यग्दृष्टि भी है जिसके लिये अनंतानुबंधी भी नहीं, अप्रत्याख्यान भी नहीं, प्रत्याख्यान भी नहीं और इन कषायों से उत्पन्न होने वाले रागद्वेष मोह भी उसके नहीं। वह कौन सा सम्यग्दृष्टि होगा तो उसके लिये आचार्य कहते हैं कि उसका अनुमान कैसे लगाये कि इस आत्मा में अनंतानुबंधी आदि 12 कषायों का अभाव है और इनसे उत्पन्न होने वाला राग द्वेष मोह इस आत्मा को नहीं है। ये पक्ष हमने बना करके उसका हेतु हमने क्या दिया? तो आचार्य कहते हैं कि **"षष्टगुणस्थानवर्ति-सरा-गसम्यग्दर्शनसहसरागसंयमभावस्य"** यानि 6वें गुणस्थान में रहने वाले सराग सम्यक्त्व के साथ जो सराग संयम है वह अन्यथा बन नहीं सकता। यानि 6वें गुणस्थान में जो सराग सम्यक्त्व है, संयम है उस हेतु से उस पक्ष की, सिद्धि कर लेते हैं। 6वें गुणस्थान तक की बात हो गई अब उसके आगे **अनंतानुबंधीअप्रत्यख्यानप्रत्याख्यानतीव्रसंज्वलनउदयजनितक्रोधमान-मायालोभाः सराग-सम्यगदृष्टेर्न संति**, कथं इति चेत्? वहाँ पर वह कहते हैं **अप्रमत्तादि-क्षीण-कषाय-पर्यंत-वीतराग-सम्यग्दर्शनाअविनाभावो वीतरागचारित्रतस्य अन्यथानुपत्तेः**। 7वें गुणस्थान से लेकर 12 गुणस्थान तक वीतराग सम्यग्दर्शन का अविनाभावी यह वीतराग चारित्र रहता है। वह वीतराग चारित्र कहाँ से प्रारंभ होगा? तो 7वें गुणस्थान का अविनाभावी वीतराग सम्यग्दर्शन का सद्भाव कौन से पक्ष में है तो जहाँ पर अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और तीव्र संज्वलन का अभाव हो उस आत्मा के अंदर वह वीतराग सम्यग्दर्शन होगा और किसी आत्मा के अंदर वीतराग सम्यग्दर्शन नहीं होगा। इन व्याख्याओं को आप डंके की चोट पर बोलना सीखो। इन व्याख्याओं को सबके सामने बिना किसी नयों का आलंबन लिये बिना सबके सामने रखना सीखो। इसमें अभी कहीं कोई नय की जरूरत नहीं पड़ी। न्याय है और जो न्याय चल रहा है वह अंतरंग आत्मा में

घटित हुये उन कर्मों के अभाव से उत्पन्न हुये आत्मा के परिणाम को अनुमान बना करके आत्मा में उस पक्ष की सिद्धि करके बना है इस न्याय से यह स्पष्ट होता है कि वीतराग सम्यग्दर्शन कभी भी चतुर्थ गुण में संभव नहीं है। पंचम गुणस्थान में भी वीतराग सम्यग्दर्शन नहीं होता है, यहाँ तक कि 6वें गुणस्थान में भी वीतराग सम्यग्दर्शन नहीं है। 7वें गुणस्थान के भी 2 भाग करना एक प्रवृत्ति रूप, एक निवृत्ति रूप। जो प्रवृत्ति रूप भाग है उसमें भी वीतराग सम्यग्दर्शन नहीं है मात्र निवृत्ति रूप ध्यान अवस्था में 7वां गुण-स्थान होगा उसमें ही वीतराग सम्यग्दर्शन का अविनाभावी वीतराग चारित्र होगा। इस वीतराग और सराग की व्याख्या को जब तक हम इस वार्तिक के अनुसार स्पष्ट रूप से नहीं समझेंगे तब तक हमारे लिये अनेक तरह के भ्रम बने रहेंगे।

विपरीत मान्यता-

आज दुनिया में ऐसे बहुत लोग है जो चौथे गुणस्थान से ही वीतराग सम्य-ग्दर्शन घटित करते हैं क्योंकि उन्हें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई हो अथवा न हुई हो लेकिन एक अनुमान मान है- अनंतानुबंधी कषाय का अभाव हुआ,मिथ्यात्व का अभाव हुआ हमारे अंदर सम्यग्दर्शन हुआ। उस सम्य-ग्दर्शन को सराग या वीतराग ये भेद करना भी आज मिथ्यात्व के रूप में डाला जा रहा है। सम्यग्दर्शन में सराग और वीतराग क्या? सम्यग्दर्शन तो सम्यग्दर्शन है और उस सम्यग्दर्शन में क्या होता है? शुद्धात्मा की अनुभूति रूप सम्यग्दर्शन मानते हैं। उस शुद्धात्मा की अनुभूति उन्हें चौथे गुणस्थान में हो रही है क्योंकि उन्हें अभी सराग सम्यग्दर्शन नहीं है। उनका सम्यग्दर्शन वीतराग है। ऐसा उन्होंने मान रखा है। मुनिमहाराज को यदि व्रतों के साथ सम्यग्दर्शन है या कोई व्रती श्रावक को व्रतों के साथ सम्यग्दर्शन है तो वह सराग सम्यग्दर्शन आज वीतराग सम्यग्दर्शन बना हुआ है, वह शुद्धोपयोग की अनुभूति में ढला हुआ है। इधर आचार्य कहते हैं कि बड़े- बड़े चक्रवर्ती सगर आदि हुये, भरत चक्रवर्ती जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुये हैं। इनके लिये आचार्य कहते हैं-**भेदाभेदरत्नत्रय-भावनाप्रियः** केवल इनके लिये इतना विशेषण दिया है **परमात्म प्रकाश** की उस टीका में आप देखना कि भेद और अभेद रत्नत्रय की भावना में उनका मन लगने लग जाता है। क्या कहा?

भेद और अभेद रत्नत्रय उनके लिये प्रिय हो जाता है। अनुभूति नहीं होती। न उनके पास अभी भेद रत्नत्रय है। न अभी अभेद रत्नत्रय है। जब तक वह गृहस्थ की अवस्था में है तो आचार्य वहाँ पर कहते हैं कि **गृहस्थानां तु भे-दाभेदरत्नत्रयशुद्धोपयोगस्य अवकाशो नास्ति**। गृहस्थों के लिये भेद और अभेद रूप रत्नत्रय का कोई स्थान ही नहीं है। उन्हें क्या करना? तो उनके लिये लिखा है भेदाभेद रत्नत्रय को उपादेय मान करके उसकी भावना करना **"सामायिककाले अपि गृहस्थः शुद्धात्म-भावनां करोति" प्रवचनसार** में **टीका** में लिखा है कि गृहस्थ क्या करता है अगर वह सम्यग्दृष्टि है तो सामायिक काल में भी शुद्धात्मा की भावना करता है। **शुद्धात्मा की भावना और शुद्धात्मा की अनुभूति करना इन दोनों में बहुत अंतर है।** शुद्धात्मा की भावना क्या हो गई? **अहं शुद्धः**, मैं शुद्ध हूँ, अहं वीतरागी- वीतरागी हूँ, अहं सिद्ध- स्वरूपोस्मि मैं सिद्ध स्वरूप हूँ, क्या है यह? शुद्धात्मा की भावना है। शुद्धात्मा की भावना का नाम शुद्धोपयोग नहीं है।

इस शुद्धोपयोग को इतना नीचे गिरा दिया गया है कि इस विशुद्धि का नाम भी शुद्धोपयोग बन गया है जिस विशुद्धि की चर्चा करना हमने शुरु से प्रारंभ की थी ये विशुद्धि ही शुद्धोपयोग बनती चली जा रही है। सम्यग्दर्शन हुआ आत्मा में अनंतानुबंधी कषाय के अभाव से तो विशुद्धि उत्पन्न हुई वह हमारा शुद्धोपयोग हुआ क्योंकि जितना राग का अभाव हो गया उससे आत्मा में विशुद्धता आई वह उपयोग शुद्धोपयोग है और बांकी जो कर्म का उदय है अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान आदि के रूप में, वह जो चल रहा है वह सब कर्म उपयोग है। एक नाम दिया गया ज्ञानधारा और में, दूसरे को नाम दे दिया गया कर्मधारा। **जिस ग्रंथ में ज्ञानधारा और कर्मधारा जैसे शब्द मिल जाये समझना यह आचार्य प्रणीत ग्रंथ नहीं है।** स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ- ज्ञानधारा और कर्मधारा का व्याख्यान करने से ही सब कुछ बिगड़ गया क्योंकि जैसे ही हमने कर्मधारा का बखान किया उसमें सब कर्म काण्ड को हमने एक रूप में छोड़ दिया। चाहे अशुभ हो चाहे शुभ वो सब कर्मधारा के रूप में। वह कर्मधारा हमारे लिये बंध का कारण है। हमें तो मतलब ज्ञान-धारा से है। वह ज्ञान धारा ही हमारा शुद्धोपयोग है। ज्ञानधारा में जो हमें आनंद आ रहा है वह हमारा वीतराग चारित्र है। अभी सराग चारित्र हुआ नहीं कि उससे पहले उन्हें वीतराग चारित्र की प्राप्ति हो गई। यह व्युत्क्रम से

स्वाध्याय करने का जो फल सामने आया है वह यह है कि चौथे गुणस्थान में ही हमें वीतरागता की प्राप्ति हुई। चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग की अनुभूति हुई। इधर सभी आचार्यों ने चाहे वो **अमृतचंद्रजी महाराज** हो चाहे **जयसेन जी महाराज** हो चाहे स्वयं **कुंदकुंद देव** हों उन सबके अभिप्राय को हम टटोलेंगे तो हमें यह स्पष्ट समझ में आयेगा कि ज्ञानी शब्द **कुंदकुंद स्वामी** ने अपनी गाथा में कह कर छोड़ दिया है। वो ज्ञानी को भी **अमृत-चंद्राचार्य जी** ने बताया है कि वो ज्ञानी कौन सा है? और **आचार्य जयसेन जी** ने भी बताया है कि वहाँ पर किस ज्ञानी की बात कर रहे हैं? जो निर्वि-कल्प समाधि के बल से निश्चय नय का आलंबन लेकर के अपनी आत्मा की अनुभूति में लगा है उसे ज्ञानी कहा जाता है। वह निश्चय नय का आलंबन लेने वाला कौन होता है? तो 7वें गुणस्थान के पहले निश्चय नय का आलंबन नहीं होता है। 7वें गुणस्थान से पहले शुद्धात्मानुभूति का कार्यक्रम प्रारंभ नहीं होता और 7वें गुणस्थान से पहले वीतराग चारित्र नहीं होता है। यह आचार्यों के द्वारा अनेक जगह लिखा हुआ है लेकिन हम सब चीजों को गौण करते हुये इस तरह से आगे बढ़ रहे है कि हम क्रियाकांड और कर्मकाण्ड को तो पीछे छोड़ रहे है और उस ज्ञान चेतना में इतना डूबते चले जा रहे है कि उस ज्ञान चेतना की प्राप्ति के लिये जो क्रियाकाण्ड बताया था वह क्रिया काण्ड हमारे लिये हेय हो गया। आप जान रहे हो कि ये सब हम कहाँ से बोल रहे हैं? कहां पर अशुभोपयोग को कर्म फल चेतना कहा गया है? बताओ आप कहाँ पर शुभोपयोग को कर्म चेतना और ज्ञान चेतना को शु-द्धोपयोग के रूप में कहा है? आपने कहीं पढ़ा है कि हम अपने मन से सब कुछ कहे जा रहे हैं बताओ? विद्वान लोगों! ये तीन चेतनाओं को हम किस रूप में व्याख्यायित कर रहे हैं और इस व्याख्या के लिये हमारे पास आलंबन है। हम निराधार नहीं बोल रहे हैं। अभी आपके दिमाग में खुजली पैदा कर रहे है कि आप अपने दिमाग को खुजलाओ कि इन तीन चेतनाओं को जो आचार्यों ने व्याख्यायित किया है वहाँ आचार्य कहते हैं यह कर्मकाण्ड जो क्रियाकाण्ड है शुभोपयोग है इस शुभोपयोग रूप कर्मफल को भिन्न साधन भाव के रूप में रखा गया है। भिन्न साधन-साध्य भाव को नहीं अपनायेंगे तब तक अभिन्न साधन से साध्य की प्राप्ति नहीं होगी। एक बहुत अच्छा उदाहरण दिया है कि जो एकांत रूप में साध्य साधन का अवलंबन लेने

वाले है उनके लिये कहा है कि वे जीव ऐसे जड़ होते चले जा रहे है, ऐसे प्रमादी होते चले जा रहे हैं कि मानो उनको खूब दूध पिला दिया गया हो, खूब घी पिला दिया हो और खूब मट्ठा पिला दिया हो और ऐसे अलसा रहे है कि बैठे-बैठे झूम रहे हैं, उन्हें प्रमाद के कारण कुछ भी समझ में नहीं आ रहा और फिर भी कहे रहे हैं, ज्ञान चेतना अ....हा....वहीं बैठे-बैठे वो झपकी आ रही है। किसकी? वो जो खाया है उसका प्रमाद। उस प्रमाद की झपकी को लेकर वो सोच रहे हैं कि हमें ज्ञान चेतना की अनुभूति हो रही है। ज्ञान चेतना का इतना स्तर गिरा दिया है इस पंचमकाल में। इस क्रियाकाण्ड के लिये आचार्य कहते हैं कि जिस भिन्न साधन साध्य भाव को अपनाये बिना कभी भी अभेद सम्यग्दर्शन अपनी ही आत्मा के ज्ञान रूप परिणाम का नाम निश्चय ज्ञान और अपनी आत्मा में स्थिर रहने का नाम सम्यक्चारित्र। ये जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मगत हैं ये तब हमें प्राप्त होगा जब हम अपने से भिन्न देव-शास्त्र-गुरु, अपनी आत्मा से भिन्न जो सात तत्व 7 हैं उन तत्वों में जब हम साधन भाव को अपनायेंगे तब हमें वो अभिन्न साधन की प्राप्ति होगी। उसके लिये यदि आपको समझ में न आये तो जिस प्रकार से वस्त्र को शुद्ध करने के लिये कोई व्यक्ति वस्त्र को बार-बार क्या करता है? किसी शिला पर पछाड़ता है, वस्त्र को शुद्ध करने के लिये साबुन की भी आवश्यकता है, जल की भी आवश्यकता है, शिला की भी आवश्य-कता है और अनादि काल से जो वस्त्र अशुद्ध बना हुआ है तो उस वस्त्र की शुद्धि के लिये आचार्य कहते हैं कि पहले भिन्न साधन-साध्य भाव अपनाओ। जब तक तुम इन चीजों का आलंबन नहीं लोगे तब तक तुम्हारे वस्त्र की शुद्धि होने वाली नहीं है। हमने क्या पढ़ लिया? जब तक हम इन चीजों को छोड़ेंगे नहीं तब तक हमें शुद्ध भाव की प्राप्ति होने वाली नहीं। जिस विधि में वस्त्र को शुद्ध करने के लिये लिखा गया था, जब हमने वस्त्र को शुद्ध हुआ देखा उस समय हमने देखा वो शिला वहीं पड़ी है, वो साबुन सोड़ा वहीं पड़ा है और वस्त्र केवल शुद्ध हो गया और वह वस्त्र केवल जो है वह धूप में पड़ा है, अपने आप सूखता चला जा रहा है। देखो! हमने कहा था कि न कि ये सब जितना भी क्रिया काण्ड है सब छोड़ना पड़ता है-इसलिये इसको ग्रहण ही क्यों करो? कि बाद में छोड़ना पड़े, पहले उसे ग्रहण करो फिर बाद में शिला, बाल्टी और साबुन को छोड़ो। साबुन लगाके घिसो फिर उसको

साफ करो। क्षयोपशम लब्धि में कर्म मल पटलों के अनुभाग को अनंतगुण हीन किया जा रहा ऐसा डिटरजेंट ऐसा साबुन लगाकरके जिसके माध्यम से अभी आत्मा का ऊपरी मल साफ हो रहा है भीतरी मल साफ नहीं हो रहा जो अनादिकाल की किट्टकालिमा लगी है वो इस क्षयोपशम लब्धि से साफ हो रही है और उसके माध्यम से उसमें थोड़ी सी राहत आई। थोड़ा सा अभी उजलापन भी नहीं आया लेकिन उस उजलेपन का ज्ञान स्वभाव का आलंबन लेकर चल रहे हैं। हमें वह उजलापन मिलेगा तो इसी प्रक्रिया में मिलेगा इसी क्रियाकाण्ड से हमें गुजरना पड़ेगा और उस क्रिया काण्ड को हमने कह दिया कि ये तो अपने से छूटेगा क्योंकि पहले तुमने साबुन लगाया और फिर उसी साबुन को तुमने निचोड़ दिया क्या मतलब रहा? और उसको उठा कर नाली में बहा दिया वो सारा का सारा क्रियाकाण्ड सब बेकार। वो हमे छाड़ना ही है तो उस वस्त्र में लगाना ही क्यों? और ऐसा ही ज्ञान धारण करके बहुत से लोग जी रहे है जितना भी शुभापयोग है वह हमें सब छोड़ना है क्योंकि आचार्यों ने लिखा है कि किंचित् मात्र भी तुम पर पदार्थ से अरहंत भगवान से तुम राग करोगे तो संसार में पड़े रहोगे। सुन रहे हो! क्योंकि उनसे क्रिया राग भी तुम्हें मोक्ष नहीं दिला सकता। स्वर्ग की संपदा ही देगा। कहाँ से बोल रहे हो? महाराज वहीं से बोल रहा हूँ जहां से हमारे कानों में ये शब्द सुनाई देते हैं। जब हम ये सुनते है देव का, गुरु का, शास्त्र का राग भी हमारे लिये बंध का कारण है और उस बंध को भी हमें छोड़ना है तो वो जीव पहले से ही राग से वीतराग हो जाते हैं पहले से ही वो इतने वीतरागी हो जाते हैं कि उन्हें अर्हंत भगवान की पूजा भी बंध का कारण नजर आती है। अर्हंत भगवान की भक्ति भी संसार का कारण दिखती है। और उस राग को छोड़े बिना उन्हें लगता है कि उस राग को हम जब तक नहीं छोड़ेंगे तब तक हमारे लिये शुद्धोपयोग नहीं होगा इसलिये उस राग को करना ही नहीं। न अर्हंत से राग करना, न शास्त्र से राग करना, न गुरु से राग करना क्योंकि वह राग भी हमें छोड़ना है और कब छोड़ना? जब हो जाये तब छोड़ना कि पहले से ही छोड़ना। अभी तो हुआ ही नहीं अनादिकाल से देव शास्त्र गुरु से अनुराग ही नहीं हुआ और अनुराग कराके महाराज फिर छोड़ें ये तो कोई बात नहीं हुई। बात इसी में है जैसे साबुन लगाके उसे निकालना है। जब निकालना ही उसमें से साबुन तो फिर लगाना ही क्यों? ये कई लोगों के

ज्ञान में आ रहा है। आचार्य कहते हैं वह साबुन लगा करके और उसमें पछाड़ लगा करके और पछाड़ नहीं लगाना हो तो हाथ में लकड़ी का वो पटकना पटकनी बोलते हैं उससे पटको पीटो और जितना भी ये पीटना है, कूटना है, साबुन लगाना है ये सब क्या है? ये सब क्रियाकांड सब शुभोपयोग है। हमने प्रायश्चित लिया अपनी आत्मा को पीटा, हमने 12 प्रकार के तप किये, अपनी आत्मा को कूटा, पीड़ा दी, हमने वंदना की, स्वाध्याय किया भगवान् की भक्ति की क्या किया? हमने अनेक प्रकार साबुन सोड़ा लगाकर अपनी आत्मा को शुद्ध बनाया। बड़े-बड़े **आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज** स्वयं **कुंदकुंद महाराज** जब भक्ति करने उतर आते है तो वो कहते हैं **छिण्णति संसारसायरं घोरं** कि अगर ये संसार सागर भी नाश को प्राप्त होगा तो हे भगवन आपकी भक्ति से प्राप्त होगा। जब **आचार्य पूज्यपाद महाराज चैत्य भक्ति** करने के लिये जिनालय में जाते है तो कहते हैं विशुद्ध। यथा बुद्धि-विशुद्धये हे भगवन्! आपकी भक्ति जितनी बुद्धि है उतनी कर रहे है हम अपनी विशुद्धि के लिये कर रहे हैं।

'प्रतिरूपाणि यथाबुद्धिविशुद्धये' जिनेंद्र भगवान के प्रतिरूपों की भक्ति भी किसके लिये हैं? विशुद्धि के लिये है। वह विशुद्धि किसके लिये कारण है? वह विशुद्धि शुद्धोपयोग के लिये कारण है। उस विशुद्धि का नाम शुद्धोपयोग नहीं है उन्होंने उस विशुद्धि को शुद्धोपयोग मान लिया है। भिन्न साधन-साध्य के द्वारा, भिन्न आलंबन के द्वारा जब वह कपड़ा साफ हो जायेगा उसके बाद में जब हम उस कपड़े को छोड़ देगे या हम उस कपड़े को ही हिलायेंगे तो वह क्या होगा? उसमें और किसी का आलंबन नहीं है। केवल कपड़ा अपने आप में ही सूख रहा है उसका नाम है शुद्धोपयोग। देखो! कपड़े को सुखाने के लिये किसी भी आलंबन की आवश्यकता नहीं है जितने भी आलंबन है सब पड़े रह जाते है इसलिये निरालंबी बनो। निरालंबन इसी का नाम है निश्चय नय। जब तक परालंबन है तब तक व्यवहार है और निश्चय नय में आत्मा निरालंबी बन जाता है। आत्मा का दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब कुछ आत्मा के गुणों से ही आत्मा के लिये होने लग जाता है। उस निश्चय नय में जाकर के जब ये सब क्रिया शुभोपयोग की छूट जाती है तो यह शुद्धोपयोग की चेतना, ज्ञान चेतना वहाँ से प्रारंभ होती है। 7वें गुणस्थान में जो वीतराग सम्यग्दर्शन के साथ वीतराग चारित्र के साथ प्रारंभ होती है,

वही ज्ञान चेतना का विकाश होते-होते वह जब पूरा 'पाणित्तमदिकंता' भले ही अरहंत भगवान के सब प्राण नहीं निकले हो लेकिन कुछ प्राण भी उनके निकले है तो भी उनके लिये ज्ञान की चेतना होगी। तुम अपने प्राण जिंदगी भर निकालोगे तो भी ज्ञान चेतना का अनुभव नहीं होगा। जो 10 प्राणों से जीव जी रहा है उनमें से कुछ प्राण उनके नष्ट हो गये हो। सब प्राण तो सिद्ध भगवान के नष्ट हो गये लेकिन अरहंत भगवान के भी कुछ प्राण नष्ट हो गये। उनके लिये वह 'पाणित्तमदिकंता' केवलज्ञान के साथ उस ज्ञान चेतना का अनुभव करते हैं। आज तक ये ज्ञान चेतना यहाँ 7वें गुणस्थान से प्रारंभ होती है ऐसा कोई वर्णन नहीं करता। आपसे कहा जाये तो आप कहोगे कि ज्ञान चेतना तो हमारे अंदर भी है क्योंकि ज्ञान चेतना हम महसूस नहीं करेंगे तो क्या हम मूरख हैं। बताओ! ज्ञान चेतना तो है लेकिन आप ये क्यों नहीं सोच रहे हो कि उस ज्ञान चेतना का प्रारंभ उस 7वें गुणस्थान से है। उससे पहले ज्ञान चेतना जुड़ी है। किस रूप में जुड़ी है? घबराओ मत! आचार्यों ने कहा है कि ज्ञान चेतना हमारे लिये उपादेय है। उस ज्ञान चेतना की भावना करते करते हुए ज्ञान चेतना को उपादेय मानते हुये वह सब क्रिया यदि कर रहा है तो वह व्यवहार और निश्चय नय को साथ लेकर चल रहा है। उसका वह शुभोपयोग नियम से उसके शुद्धोपयोग के लिये कारण बनेगा। अगर तुम्हारे अंदर केवल क्रिया है और उस ज्ञान चेतना को तुम उपादेय नहीं माने हो, शुद्धात्म भावना को कभी उपादेय नहीं मानते हो तो तुम्हारे लिये केवल व्यवहारा भाव कहा गया है उसको एकांत नय का आलंबन कर लेने वाला कहा गया है। अगर वही व्यवहारी जीव स्वयं वह शुद्धात्मभावना का आलंबन कर लेता है तो वह व्यवहार और निश्चय को जानने वाला अर्थात् सम्यग्दृष्टि होता है।

एक श्रीमान जी आचार्य जी के पास पहुँचे। पढ़ रखा है, सब करणानुयोग, द्रव्यानुयोग। वैसे करणानुयोग तो पढ़ते नहीं, मुख्य रूप से द्रव्यानुयोग ही पढ़ा जाता है और जाकर के प्रश्न किया महाराज! स्वाध्याय में ज्यादा कर्म का बंध होता या पूजा में ज्यादा कर्म बंध होता है? तो आचार्य महाराज कहते हैं कि स्वाध्याय में ज्यादा कर्म का बंध होगा। महाराज! कैसी बात कर रहे हो आप? स्वध्याय को कर्म निर्जरा का कारण बताया गया है। वहाँ बन्ध कैसे होगा? आचार्य श्री जी बोले पूजा भी एक क्रिया है। पूजा तो तुम दिन

में एक बार करोगे और स्वाध्याय तीन बार करोगे। अगर तुम्हारे लिये पूजा कर्म बंध का कारण है तो उससे तिगुना स्वाध्याय कर्म बंध के लिये कारण है। बताओ तैयार हो? स्वाध्याय तो शुद्धोपयोग हो रहा है। यह भिन्न साधन-साध्य भाव भी अभिन्न साधन-साध्य भाव बन रहा है। भगवान की पूजा करना शुभोपयोग बन रहा है। शुभोपयोग सो हेय और शुद्धोपयोग उपादेय। स्वाध्याय करना भी एक क्रिया है क्योंकि उसमें भी हम भिन्न-साधन का अवलंबन ले रहे हैं और पूजा करने में भी हम भगवान के चैत्य-बिंबों का अवलंबन ले रहे। इसमें और उसमें क्या अंतर है? जो पूजा तो कर्म बंध का कारण हो रही है और स्वाध्याय कर्म निर्जय का कारण हो रहा है। ये कौन सा ज्ञान हो रहा है? हमें बताओ जो भिन्न साधन-साध्य रूप है तो उसे भिन्न साधन रूप में ही मानो। ये सब शुभोपयोग की प्रवृत्तियाँ हैं। इन शुभोपयोग की प्रवृत्तियों से जब वह आत्मा समरसी भाव में होता है तो ये शुभोपयोग भी परंपरा से मोक्ष का कारण बन जाता है ऐसा आचार्यों ने सर्वत्र लिखा है। लेकिन एकांत रूप से मोक्ष का कारण नहीं है। शुद्धोपयोग भी एकांत रूप से मोक्ष का कारण नहीं है। बताओ? कैसे नहीं है? वह शुद्धोपयोग जो तुम्हें 11वें गुणस्थान तक ले गया, वह 11वें गुणस्थान में पहुँचा हुआ शुद्धोपयोग भी मोक्ष का कारण नहीं है क्योंकि वहाँ से तुम्हें गिर करके नीचे आना है। वहाँ से आकर शुद्धोपयोग भी तुम्हें शुभोपयोग में ला सकता और भी गिरकर अशुभोपयोग में पहुँचा सकता है। आप ये विचार करके चलो, कोई भी क्रिया, कोई भी धर्म जब एकांत रूप में हमारे सामने आ जाता है तो वहाँ पर हम अनेक आचार्यों के अभिप्राय हैं उनको भूल जाते हैं। उसी भूल के कारण हमारे सामने एकांत रूप से कोई नय आकर के खड़ा हो जाता है तो वह इतना कटु हो जाता है कि बहुत आचार्यों ने उसे एकांत मिथ्यात्व का नाम दे दिया। स्वयं आचार्य श्री ज्ञानसागरजी ने अपने **सम्यक्त्वसार शतक** में उसे निश्चय एकांत कहा है। ये एकांत मिथ्यात्व है। बड़े-बड़े विद्वानों ने **महेंद्रचंद्र शास्त्री** ने भी इस बात को महसूस किया **वंशीधर शास्त्री** ने भी इस बात को लिया। अब इतनी कट्टरता आती चली जा रही है कि निश्चय एकांत के माध्यम से हम अपनी ज्ञान चेतना का चौथे गुणस्थान में ले आये। ज्ञान कहीं पर लुप्त नहीं किया जा रहा। ज्ञान और दर्शन रूप चेतना तो सबकी बनी हुई है वह तो सब सामान्य है। उस चेतना की अनुभूति तो सबको हो रही है

लेकिन जिस चेतना की अनुभूति होगी उस ज्ञान चेतना की बात कही जा रही है, न कि वह ज्ञान चेतना कि ज्ञानोपयोग 8 प्रकार का है दर्शनोपयोग 4 प्रकार का है। ये ज्ञान और दर्शन चेतना की बात नहीं। वो ज्ञान, दर्शन तो जीव का गुण है, स्वभाव है वो तो सर्वत्र विद्यमान है। जिस ज्ञान चेतना को आचार्यों ने कहा है और हमने व्याख्यायित किया वो ज्ञान चेतना जब भी उत्पन्न होगी तो निवृत्ति अवस्था में 7वें गुणस्थान में शुद्धोपयोग के साथ प्रारम्भ होती है, वीतरागदशा के साथ प्रारंभ होती है। अब आप ये सोचो कि हमें इसी प्रकार से चेतना के भ्रम को दूर करते हुये इसी प्रकार से इस चेतना का व्याख्यान सर्वत्र करना, सुनना और सुनाना। अब बताओ! आपके लिये कोई भी प्रश्न हो तो आप अभी पूछ सकते हैं। सबसे पहले अब हम आप से पूछते हैं कि क्या कभी आपने इस तरह का व्याख्यान या इस तरह का प्ररू-पण कहीं पढ़ा। कही इस तरह का विवरण आया। पंचाध्यायी को मैंने आज तक नहीं पढ़ा और मैं पंचाध्यायी से हाथ धोये बैठा हूँ। हमारे गुरू महाराज ने न हमें कभी पढ़ाया न हमें कभी पढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया। उन्होंने हमेशा कहा कि अपने जीवन में कभी पंचाध्यायी पढ़ना ही नहीं। जो उनने कहा सो हमने माना। हमने **आचार्य कुंदकुंद का पंचास्तिकाय, प्रवचन-सार, समयसार** जी सिद्धांत बताये उसके हिसाब से आपके सामने बताया कि ये चेतना भी कहीं पर व्याख्यायित है, छिपी हुई है और वह पंचास्तिकाय ग्रंथ में ही है। अब देखना उसको **जयसेन महाराज** की नहीं **अमृतचंद्राचार्य** की टीका में मिलेगी। आप उसको पढ़ो और वह पंचास्तिकाय के लास्ट के दो पन्ने, जिस टीका में निश्चयाभाष, व्यवहाराभाष और निश्चय व्यवहार का समन्वय दिया है, वह सभी शिक्षार्थियों को सभी तो विद्यार्थियों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये। उसी में लिखा हुआ है। उसमें तो कर्म चेतना को क्या लिख दिया? **मोनइन्द्रियकर्म चेतना** यानि मुनि महाराज की जो चेतना है वह कर्म चेतना है क्योंकि मुनिराज के पास जितना क्रियाकाण्ड है वो सब उनकी कर्म चेतना है। वही जब उस क्रियाकाण्ड को छोड़ करके परम भाव में लीन होते हैं उसी शुद्धोपयोग को ज्ञानचेतना कहा है। उसी विषय को आप पढ़ो, पढ़ाओ दुनियाँ में अनेक विद्वानों ने निश्चयाभास, उभयाभास, व्यवहारभास लिखा है। आप सिर्फ वहीं पर पढ़ो। अमृत-चंद्र जी ने सब कुछ लिखा हुआ है। जो हमने तुम्हें कपड़े का उदाहरण दिया वो भी उदाहरण

दिये। जितनी भी बाते हैं, सब उस टीका में लिखी हुई मिलेगी। स्वयं अमृ-तचंद्र जी महाराज इस बात को कह रहें हैं कि कौन व्यक्ति इस निश्चयनय के रस का आलंबन लेने वाला है जो क्रम में इस परिपाटी को पढ़ता हुआ आगे बढ़ता है। पहले से निश्चय नय का आलंवन तो लिया जा सकता है लेकिन निश्चय की अनुभूति कभी भी व्यवहार को अपनाये बिना नहीं हो सकती और यह व्यवहार हमारे लिये निश्चयनय तक पहुँचाता है। आप **समयसार जी** ग्रंथ की उस गाथा को देखो

शुद्ध नय के आश्रित जो शुद्धभाव वह केवल उनके लिए है जिन्होंने शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर लिया है और जब तक शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं होगी तब तक वे अपरम भाव में स्थिर हैं। **आचार्य कुंदकुंददेव** ने तो इतना पछाड़ा है कि ज्ञानचेतना की अनुभूति उस 13वें गुणस्थान से पहले नहीं होती। उससे पहले 12वें गुणस्थान वाले भी अपरमभाव में स्थित हैं, वह भी पूर्ण शुद्ध नहीं हैं, वह भी अपरम भाव के कारण व्यवहार नय के आलंबन योग्य हैं। 12वें गुणस्थान तक आचार्य कुंदकुंद का व्यवहार नय इस गाथा से घटित हो जाता है। और हम यहाँ पर उस व्यवहार को इतना हेय बनाये जा रहे हैं कि वो जो 13वें, 14वें गुणस्थान में निश्चय प्राप्त होना है उसे हम चौथे गुणस्थान में लेकर आ रहे हैं। सब एक ऐसा उल्टा क्रम चल रहा है। अगर आप लोग इस तरह की व्याख्याओं को समाज के सामने प्रस्तुत नहीं करेंगे तो समाज में एक बहुत बड़ा वाइरस फैल रहा है। बहुत बड़ा वायरस और उस वायरस की चपेट में सब लोग आ रहे हैं। गोटेगांव थोड़ा दूर है लेकिन एकाध दो वाइरस आ ही जाते हैं और वो वायरस क्या करते हैं? फैलाने की कोशिश करते हैं। आप लोगों का ऐसा पुण्य है कि आचार्य महाराज के कुछ ऐसे शिष्य आ जाते हैं जो उस वायरस को फैलने नहीं देते। वीतराग चारित्र की भावना जो शुद्धात्मा की भावना के रूप में उपादेय है उसे मानकर हमें चलना है न कि हमें शुद्धात्मा की अनुभूति हो रही है। इसके बारे में आपको कोई शंका हो तो अमृतचंद्र महाराज जी और जयसेन महाराज जी से समाधान मिलेंगे। उसी माध्यम से देखो। अगर विशुद्धि का नाम शुद्धो-पयोग है और वह सम्यग्दर्शन के साथ हो रहा है तो वह सम्यग्दर्शन तो बहुत काल तक रह सकता है लेकिन शुद्धोपयोग मात्र अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। आपके लिये सम्यग्दर्शन की विशुद्धि शुद्धोपयोग है तो फिर उस शुद्धोपयोग

का काल भी उतना ही मानना पड़ेगा जितना सम्यग्दर्शन का काल है। 66 सागर काल मानना पड़ेगा। आचार्य कहते हैं ये जो सम्यग्दर्शन के साथ इतना काल बीतेगा उसमें ये सब सराग सम्यग्दर्शन वाला काल है। वीतराग सम्यग्दर्शन की अनुभूति अगर बीच में हो जाये तो और बात है। सब सराग सम्यग्दर्शन के साथ इतना काल बीत सकता है वीतराग सम्यग्दर्शन के साथ तो अन्तर्मुहूर्त काल में ही वह कपड़ा बिल्कुल निचुड़ करके सूख जाता है। जब तक उस कपड़े में साबुन सोड़ा और पानी लगा है तो वह क्या है? सब शुभोपयोग है और जैसे ही हमने उस सबको निचोड़ करके कपड़े को हवा में रख दिया, धूप में डाल दिया, ये हो गया शुद्धोपयोग। एकदम अन्त-र्मुहूर्त के बाद हमने उस कपड़े को देखा तो हमने देखा पहले की तरह हमारा कपड़ा जैसा था वैसा उज्जवल हो गया। यह है 13वां गुणस्थान। यदि हमने प्रेस कर दी तो वह और चमक गया ये हमारे लिये हो गई पूर्ण शुद्ध सिद्ध अवस्था। इस उदाहरण के माध्यम से भी हम समझ सकते है कि हमारे लिये क्या उपादेय है? क्या हेय? यह विशुद्धि लब्धि भी आगे आने वाली लब्धि के लिये कारण है और पिछली क्षयोपशम लब्धि का कार्य है। इस विशुद्धि को हम अपनाते रहे और हमें सारा का सारा पुरुषार्थ विशुद्धि बढ़ाने के लिये ही करना है। जितना भी हमारे सामने संयमासंयम भाव आयेगा, संयम भाव आयेगा उन भावों में भी लब्धि स्थान बढ़ेगा। भाव विशुद्धि के माध्यम से बढ़ते हैं। विशुद्धि जब बढ़ेगी तब ही आपको ये लब्धि स्थान प्राप्त होंगे। उस विशुद्धि का ही ये पूरा मोक्ष मार्ग है। मोक्षमार्ग में संक्लेश का कोई भी स्थान नहीं है। विशुद्धि के माध्यम से ही स्थितिकाण्डकघात[1] अनुभाग काण्डक घात होते हैं। विशुद्धि के माध्यम से ही सब करण परिणाम होते हैं लेकिन उस विशुद्धि में अपने मन में इतनी शुद्धि रखे कि उस विशुद्धि में शुभोपयोग बना रहे। शुभोपयोग में भी विशुद्धि बढ़ती है। शुद्धोपयोग में भी विशुद्धि बढ़ती है। शुभोपयोग में भी हम विशुद्धि बढ़ायें। चैत्यभक्ति करने से स्थिति काण्डक का घात होता है ऐसा श्री **जयधवल** आदि ग्रंथों में लिखा है। भक्ति करने से कर्मों की स्थिति काण्डक घात होता है। सामान्य स्थिति

---

1 जिन स्थितियों का घात संख्यात भाग हानि, संख्यात गुणहानि आदि चार हानि के साथ होता है वह स्थिति काण्डकघात है। इसमें उपरितन निषेकों का कम से अघस्तन निषेकों में क्षेपण करना स्थितिकाण्डकघात है।

का घात अलग है, काण्डक घात अलग है। काण्डक का घात अलग होता है, वह इसी विशुद्धि के माध्यम से होता है। हम सब विशुद्धि के आलंबन को परालंबन कहके उसे व्यवहार की कोटि में डाल देते हैं और उसे बंध का कारण कह रहे हैं, तो ये सब इन शास्त्रों के साथ अन्याय है। जो सुन रहे हैं और अन्यत्र कुछ भी कह रहे हैं वो भी इस अन्याय का समर्थन कर रहे हैं, करेंगे, ये मान कर चलना। इसलिये हम फैली हुई विसंगति को जितना दूर कर सकें, ये हमारा बहुत बड़ा धर्म प्रभावना का कार्य होगा। हम सभी को इस धर्म प्रभावना के कार्य में लगना चाहिये।

शंका समाधान (विशुद्धि लब्धि)

शंका– कोई भी लब्धि एक साथ प्राप्त होती है कि कुछ काल लगता है?

समाधान– सभी लब्धियॉं क्रम क्रम से ही होती हैं। एक साथ लब्धियाँ नहीं होती। ये सब लब्धियाँ क्रम-क्रम से होंगी और अन्तर-मुहूर्त के साथ में इनकी प्राप्ति है। इन लब्धियों से सम्पन्न जो अभी बता रहे हैं आगे आयेगा, तीन लब्धियों से सम्पन्न जीव ही प्रयोग्य लब्धि के योग्य होता है फिर वही करण लब्धि में ढलेगा, करण लब्धि में भी यह क्रम बना हुआ है। ये सब जो हैं, इसी क्रम से चलती हैं।

शंका– क्या सप्तम गुणस्थान में सराग सम्यग्दर्शन नही होता?

समाधान– जब सप्तम गुणस्थान में प्रवृत्ति की दशा होगी तो उस समय पर सराग सम्यक्त्व होगा। जब वह ध्यान में बैठकर अपनी शुद्ध आत्मा को उपादेय मानकर, उस शुद्ध आत्मा में लीन होगा तो उस समय पर उसके लिये वीतराग सम्यग्दर्शन होगा। इस सप्तम गुणस्थान में भी वह वीतराग सम्यग्दर्शन की स्थिति, ध्यान की एकाग्रता में ही घटित होगी। जब तक ध्यान की एकाग्रता नहीं है तब तक वह भी सराग सम्यक्त्व की स्थिति जानना।

शंका– कोई भी लब्धि की शुरूआत से उसे लब्धि कहे या पूर्ण हो गई तब उसे लब्धि कहें?

समाधान– जब वह प्राप्ति आपके लिये हो जाये तब उस लब्धि का मतलब–प्राप्ति। वह आपके लिये करणलब्धि का मतलब हो गया, आपके लिये उन करण परिणामों की प्राप्ति हो गयी जैसे अध:प्रवृत्तकरण सम्बन्धी परिणाम आपके हुए, तो वह कहलायी आपकी–अध:प्रवृत्तकरण की लब्धि। अब उसकी प्राप्ति आपकी प्रारम्भ से और अन्त तक। जैसे ही आपने प्रारम्भ किया तो वह भी करण लब्धि है और जब तक उसका अन्त नहीं होगा, तब तक वह करण लब्धि ही है। उसमें प्रारम्भ से करण लब्धि नहीं है अन्त में ही होगी ऐसा भी नहीं है। जहाँ से प्रारम्भ हो, क्षयोपशम लब्धि जहाँ से प्रारम्भ हुई, वहाँ से ही शुरू हो जाती है और जब तक वह रहेगी तब तक वह लब्धि बनी रहेगी। उसकी प्राप्ति अन्त में हो जाना, इसलिये आप उसको अन्त में प्राप्ति होने से, उसको करण लब्धि कहो और उससे पहले के परिणाम, क्या आपके लिये करण लब्धि के नहीं कहलायेंगे।

प्राप्ति तो है लेकिन वह प्राप्ति, केवल अन्त की प्राप्ति ही नहीं है। शुरूआत से उस विशुद्धि की प्राप्ति और उन परिणामों की प्राप्ति भी, प्राप्ति है। इसलिये वह करण लब्धि का मतलब जिस समय पर आप अध:करण में प्रवृत्त हुए, वह आपकी करण लब्धि प्रारम्भ हो गई। वह प्रारम्भ कहलायेगी और अन्त:करण हो गया पूर्ण तो आपकी करण लब्धि समाप्त हो गई। प्रारम्भ और समाप्ति दोनों आपको मानना पड़ेगा। केवल शब्द को उसी अर्थ में लेकर, निरुक्ति अर्थ के रूप में ही ग्रहण करके उसका अर्थ न करें क्योंकि वह पूरा उसमें समाहित होना चाहिये। जो अपना करण लब्धि का कार्य है, वह पूरा का पूरा प्रारम्भ से अन्त तक उसमें समाहित होता है।

शंका– सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन के श्रद्धान में क्या अन्तर है?

समाधान– देखो, श्रद्धान तो सराग सम्यग्दर्शन में, आत्मा का, साक्षात नहीं होता। आत्मा का जो हमने ज्ञान प्राप्त किया, उस रूप में श्रद्धान होता है। तो अनुभूति के साथ में जो हमें श्रद्धान उत्पन्न होगा वह केवल वीतराग सम्यग्दर्शन की दशा में, ध्यान की दशा में हमें प्राप्त होगा और वैसे जो होगा वह हमें केवल ज्ञानात्मक होगा। हमने जो ज्ञान को प्राप्त कर लिया, हमारे लिये श्रद्धान वह कहलायेगा। अनुभूति चारित्र का विषय है, तभी तो

वीतराग चारित्र से उस अनुभूति को प्रारम्भ कर रहे है और सराग चारित्र में वह अनुभूति नहीं है। वहाँ पर अभी कषायों का सद्भाव है और उन कषायों के कारण से उस अनुभूति में कमी आती है।

अध्यात्म में भी और आगम में भी शुक्लध्यान माना है। शुक्लध्यान आठवें गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाता है। कषाय सप्तम के बाद भी है लेकिन आचार्य कुन्दकुन्द देव ने भी समयसार आदि ग्रन्थों में लिखा है- जो हमारे लिये बुद्धिपूर्वक राग छोड़ने की बात थी वह सब छोड़ने से ही हमारे लिये अबुद्धिपूर्वक जो राग बचा है, उसको हम अपने अन्दर, उस कषाय को, शुद्धोपयोग के साथ में समाप्त कर देते हैं।

नाटक समयसार कलश में- कि अबुद्धिपूर्वक जो राग बचा है उसको जीतने के लिये वह अपनी शक्ति का स्पर्शन करता है। वह शक्ति कौन सी? तो यही ज्ञान चेतना का वह स्पर्शन करता है और जब वह पूरी प्रवृत्तियों को, माने उसका मन भी जिन वृत्तियों में उलझा हुआ है वह सब वृत्तियों को पूरा जब उच्छेद कर देता है तो वह ज्ञान की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

'ज्ञानी निरास्त्रवो भवति' वह ज्ञानी निरास्त्रव हो जाता है। एक अबुद्धिपूर्वक राग होना और एक बुद्धिपूर्वक राग होना। बुद्धिपूर्वक राग को छोड़ने की प्रक्रिया जब हो जाती है तो अबुद्धिपूर्वक राग को जीतने में कोई बाधा नही और ह अबुद्धिपूर्वक राग को जीतने की प्रारम्भिक दशा, वीतराग दशा वहाँ से प्रारम्भ हो जाती है। उसकी पूर्णता, उस वीतराग दशा की, वह आगे जाकर बारहवें गुणस्थान में हो जायेगी। प्रारम्भ यहाँ से हो जायेगा। लेकिन उस वीतराग दशा का प्रारम्भ आप चौथे गुणस्थान से करो तो ये अभिप्राय बिल्कुल भी समझ में नहीं आता। आचार्यों ने ऐसा कहीं नहीं लिखा है।

शंका- जो सराग और वीतरागता की बात करते हैं। सम्यग्दर्शन के साथ जोड़ते हैं। वह क्या स्वामित्व परक कथन है या गुणपरक कथन है?

समाधान- देखो, कोई भी गुण होते हैं तो उन गुणों का, दूसरे गुणों का भी उस गुण के ऊपर प्रभाव रहता है। जब तक आत्मा कर्म मल से सहित है, राग से सहित है, कषाय से सहित है तो सम्यक्त्व के ऊपर उस कषाय का

प्रभाव है। तभी उस सम्यवत्व को सराग सम्यक्त्व कहा जाता है। निर्गुणा गुणाः तो है लेकिन निर्गुणा कर्मों को तो नहीं कहा न। कर्म का प्रभाव तो गुण के ऊपर है। हाँ, तो कर्म का प्रभाव ही जानना। कर्म का प्रभाव ही मानो, वह भी हम बतायेंगे। गुण का प्रभाव भी बाद में बतायेंगे। वह भी अभी प्रक्रिया आयेगी।

कर्म का प्रभाव तो गुण के ऊपर मानोगे। गुण अपना शुद्ध हो गया। सम्यग्द-र्शन की प्राप्ति हो गई लेकिन उसके ऊपर राग का, अप्रत्याख्यान का प्रभाव अलग, प्रत्याख्यान जब रह जायेगा तो उसका प्रभाव अलग, संज्वलन के साथ में जो सम्यग्दर्शन है उसका प्रभाव अलग, तीव्रता के साथ अलग, मन्दता के साथ अलग। इसको यदि हम नहीं मानेंगे तो पूरा सम्यग्दर्शन एकमेव हो जायेगा। सराग, वीतराग का भेद मानना, लोग इसको मिथ्यात्व कहने लगे। जबकि आचार्य कहते हैं-

'तत्वभेदात्सरागवीतरागभेदात'

ये आचार्य पूज्यपाद महाराज की पंक्तियाँ हैं।

वहाँ सिद्धान्त ग्रन्थों में तो और स्पष्टरूप से भेद किया है। जब तक दसवां गुणस्थान न आ जाये तब तक वहाँ से वीतराग सम्यग्दर्शन का प्रारम्भ नही मानते। सिद्धान्त में तो और इतना स्पष्ट भेद किया है। वह वीतराग वहाँ से शुरू करते हैं और अध्यात्म में सातवें गुणस्थान से शुरू कर देते हैं। वह भी स्वामित्व है। सातवें गुणस्थान में रहने वाले जीव के पास में जो सम्यग्दर्शन है, वीतराग सम्यग्दर्शन का प्रारम्भ वहाँ से हो रहा है तो वह उसका स्वामी कहलाया। छठवें गुणस्थान तक सराग सम्यग्दर्शन है, वह जितने भी जीव हैं वह उसके सराग सम्यग्दर्शन के छठवें गुणस्थान तक के स्वामी हैं। यह स्वामी भेद के माध्यम से ही तो हो रहा है।

जो आचार्यों ने तीन प्रकार के उपयोगों के माध्यम से व्यख्यान किये हैं, जितनी भी वार्तिकें लिखी हुई हैं, इस सबसे भी स्पष्ट होता है कि स्वामी के भेद से ही, ये सराग और वीतरागता का विभाजन किया गया है। आगम में भी, अध्यात्म में भी।

शंका– भावना, चिन्तन और अनुभव में क्या अन्तर है?

समाधान– देखो, भावना तो अनेक प्रकार की, जैसे बारह भावना है या हमने पूर्व में जो अपनी स्मृति में ले रखा है तो उस स्मृति को हम भावना के रूप में ले आते हैं।

चिन्तन में वह आता है जो वस्तुत: हमारे लिये श्रुतज्ञान से सम्बन्ध रखने वाला हो। श्रुतज्ञान में जब हम उस चिन्तन को करते हुए एकाग्रता के रूप में आगे बढ़ते हैं तो वह चिन्तन है। भावना में एकाग्रता नहीं आती। चिन्तन से एकाग्रता आती है। और अनुभव, जब हम उस चिन्तन को भी छोड़कर, केवल हम जिस विषय में चिन्तन कर रहे हैं, उसकी जब हमें अनुभूति होने लग जाती है तो वह अनुभव कहलाता है।

ऐसे यह भीतर-भीतर तक आने की प्रक्रिया भी हम इसको समझ सकते हैं। भावना से चिन्तन बड़ा और चिन्तन से अनुभव बड़ा।

शंका– 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' ये भावना है। इसका हम चिन्तन करते हैं तो सब सुखी हो जायेंगे फिर सभी का अनुभव हम करने लगेंगे कि अनुभूति में पहुंच जायेंगे।

समाधान– आपको सुख की अनुभूति होने लग जायेगी, सबको सुख की अनुभूति होने लग जायेगी? सबकी सुख की अनुभूति से आपको कोई लेना देना नहीं, अरे पंडित जी, सबके सुख की अनुभूति का चिन्तन अपने लिये नहीं होना, अपने सुख की अनुभूति का होना है। जिस समय पर आपको ऐसी अनुभूति होने लगेगी कि हम सुखी हैं। समझ लेना, सब सुखी हैं। ये उसका अर्थ है, समझ आ गया न। चिन्तन करते-करते जब हम पूर्ण सुखी हो जायें, कि हाँ, अब हमें किसी भी जीव के दुख से कोई दुख नहीं है तो समझ लेना कि आप पूर्ण सुखी हैं और आपके कारण से सब सुखी हो गये। आप सबके सुख की चिन्ता न करो। बस स्वयं सुखी होने का मार्ग है, ये मोक्ष मार्ग।

शंका– अनन्तानुबंधी कषाय के अभाव में क्या वीतरागता नहीं आती?

समाधान– नहीं आती, देखो, आचार्य कहते हैं- वीतरागता नहीं आती, राग की कमी होती है। इसको ऐसे व्याख्यायित करो- राग की कमी होना अलग चीज और वीतरागता आना अलग चीज। सुनो, बहुत अच्छा प्रश्न है और उसमें अन्तर समझो।

वीतरागता आत्मा का स्वभाव है, जैसे कपड़ा है, और उस कपड़े के ऊपर बहुत कीट-कालिमा लगी है। हमने उसकी थोड़ी सी कालिमा हटा दी तो कपड़े का उजलापन नहीं प्रकट हो गया। वीतरागता अभी प्रकट नहीं हुई, वह उजलापन तब प्रकट होगा जब हम उस वीतरागता के निकट होंगे। यानि कपड़े को शुद्ध करने के बिल्कुल निकट होंगे, उससे पहले वह कपड़ा बिल्कुल गन्दा ही है। ऊपर की अनन्तानुबंधी हट जाने से राग की कमी आयी है, भीतर की वीतरागता नहीं प्रकट हुई। इस बात में अन्तर है, इस बात को आप समझो।

अन्तर यही है, जब तक से संज्वलन कषाय तक के स्पर्धकों का या यूँ कह लो सर्वघाति स्पर्धकों का जब तक उदय है, तब तक आपके लिये वीतरागता नहीं है। जब देशघाति स्पर्धकों का उदय आयेगा, कषाय के, तब से आपके लिये वीतरागता शुरू होगी। ये मानकर चलो, सर्वघाति स्पर्धक सर्व का घात करते हैं, आत्मा की वीतरागता का घात करते हैं। वीतराग चारित्र का घात, वीतराग सम्यग्दर्शन का घात करने वाले हैं।

कषाय के अभाव रूप में जो वीतरागता मानी गयी है वह वीतरागता नहीं है। अभी जब तक, सर्वघाति स्पर्धकों का उदय कहाँ तक है, अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, इस प्रत्याख्यान का उदय तो संयमासंयम में भी है तो वहाँ तक आपके लिये वीतरागता नहीं है।

कहाँ से शुरू होगी वीतरागता? तो वह जब प्रत्याख्यान के भी सर्वघाति स्पर्धकों का अभाव हो जाये और मात्र वहाँ पर संज्वलन के स्पर्धक बचे रहे, वहाँ से वीतरागता शुरू करना। संज्वलन में भी होते हैं पर वो यथाख्यात चारित्र को घात करने के लिये होते हैं, वीतरागता का घात करने के लिये नहीं होते। वीतरागता की शुरूआत अगर वहाँ से हो रही है, देखो, देशघाति स्पर्धक बचे, आप इसे समझो तो कि जब तक सर्वघाति का उदय रहेगा,

आपके लिये जैसे कपड़े के ऊपर कीट-कालिमा लगी हुई है जो सर्वघात कर रही है तब तक उस कपड़े में उजलापन नहीं आयेगा। लेकिन जब देशघाति, माने पूरी-पूरी कीट-कालिमा साफ हो गई हो और कुछ थोड़ा थोड़ा सा बस, एक बार और ब्रुश लगा दो बस सब साफ हो जाये, ऐसी स्थिति बचे तो वह देशघाति स्थिति है। उजलापन उसमें आ जाता है, पूरा उजलापन नहीं हुआ, पर उजलापन वहाँ से प्रारम्भ हो जाता है।

इसलिये आचार्यों ने कहा है- देशघाति के भी, उसमें उन्होने तीव्रता भी मानी है तो तीव्रता नहीं भी मानी। उसमें भी उन्होने मन्दता के साथ ही उस वीतरागता को स्वीकार किया है। यह बहुत अच्छी बड़ी चीज है।

शंका- एक साथ कितनी चेतनायें एक जीव को हो सकती हैं?

समाधान- देखो, जब हम इस तरह से गुणस्थानों के अनुसार चेतनाओं की व्याख्या करेंगे तो एक साथ एक ही चेतना होगी। जब तक कर्मफल चेतना है, अशुभोपयोग रूप में है। अशुभोपयोग के साथ शुभोपयोग नहीं होता। जब शुभोपयोग आयेगा तो उसके साथ में ना अशुभोपयोग है, ना शुद्धोपयोग है। शुभोपयोग माने शुभ उपयोग। शुद्धोपयोग रूप जब हम ज्ञान चेतना को प्रारम्भ करेंगे तो वहाँ मात्र शुद्धोपयोग होगा, वहाँ शुभोपयोग नहीं होगा।

तीनों उपयोगों में से एक ही उपयोग एक समय में होता है। उसी प्रकार तीन चेतनाओं में से एक चेतना ही एक समय पर मानो।

ये आपकी जो व्याख्या है वह अलग है और जो हमने व्याख्या की है, वह अलग है। हम अपनी व्याख्या के अनुसार आपको उत्तर दे रहे है। आप अपनी व्याख्या से कह रहे हैं। उस व्याख्या में बहुत विसंगतियाँ हैं। उस व्याख्या में चेतना का कोई स्तर ही नहीं है। सब कर्म कर रहे हैं, सब ज्ञान का भी अनुभव कर रहे हैं और सब कर्म फल का भी अनुभव कर रहे हैं। तो आप उसको उठाओगे कैसे? हम आपको ऊपर उठाना चाह रहे हैं। उस चेतना का विकास करो। इस ढ़ंग से व्याख्यायित करोगे तभी आनन्द आयेगा।

शंका- ज्ञान चेतना सातवें में क्यों और कैसे?

समाधान– देखो, वही बात है, ज्ञान चेतना सातवें गुणस्थान में क्यों? क्योंकि वहाँ पर वीतराग सम्यग्दर्शन का अविनाभावी वीतराग चारित्र का प्रारम्भ है। वहाँ से ही शुद्धोपयोग की दशा प्रारम्भ है।

और कैसे? तो कैसे के लिये वही संज्वलन के देशघाति स्पर्धकों का भी मन्द उदय जब वहाँ पर हो जाता है तब हमारे लिये चारित्र गुण जो आत्मा का है, वह प्रकट होता है और उस चारित्र गुण की अनुभूति हमारे लिये होती है, उससे पहले नहीं होती। उससे पहले स्थिरता भी नहीं आती।

शंका– आत्मप्रतीति रूप श्रद्धान और आत्मप्रतीति रूप ज्ञान अविरत सम्यग्दृष्टि के होता है। ऐसा अमृत चन्द्र जी आचार्य ने कहा है। इसमें आत्मप्रतीति का क्या अर्थ है?

समाधान– अगर आप आचार्य अमृत चन्द्र जी के भावों को समझोगे तो आप ये जान लोगे कि वह जिस आत्मप्रतीति की बात कर रहे हैं, वह इतने बड़े आचार्य हैं कि निर्विकल्प समाधि लक्षण वाले उस वीतरागता के साथ होने वाली आत्मप्रतीति से नीचे वह कोई बात करते ही नहीं। जिन्होंने ज्ञानी शब्द के द्वारा, उसी निर्विकल्प वीतराग समाधि में लीन हुए व्यक्ति को ही ज्ञानी कहा है। उससे पहले सब अज्ञानी हैं। उन्होंने वहाँ पर मिथ्यादृष्टि भी कहा है तो उनके लिये ही कह दिया है कि जो इस निर्विकल्प समाधि रूप वीतराग सम्यग्दर्शन से रहित हैं वो सब उनकी दृष्टि में मिथ्यादृष्टि है।

सराग सम्यग्दृष्टि भी नही कहते वह। वे इतने बड़े ज्ञानी हैं। उन आचार्य अमृत चन्द्र जी महाराज के द्वारा जो आत्मप्रतीति की बात कही गयी है, यह वही आत्मप्रतीति है जिसमें वह आत्मानुभव रूप निश्चय सम्यग्चारित्र में ढले हुए उस ज्ञानी की बात कर रहे हैं और कोई सम्यग्दृष्टि नहीं है। वह हम अपने आप से लगा लेते है कि एक ज्ञानी, एक अज्ञानी। उन्होने जिस ज्ञानी की बात की वह सातवें गुणस्थान में निवृत्ति रूप में बैठा हुआ ज्ञानी है और हम यहाँ अपनी चटाई पर बैठे हुए ज्ञानी में, हम उस ज्ञानी को लगा ले रहे है। यह उनके साथ अन्याय कर रहे हैं।

उनको पूरा पढ़ो, बहुत उसमें मिलेगा लेकिन उन्होने खुलासा कम किया है।

वह खुलासा जयसेन महाराज ने किया है इसलिये कुछ लोगों को इतनी एलर्जी है कि वह जयसेन जी महाराज की टीका ही नहीं पढ़ते। इतनी एलर्जी है उन महाराज से कि अभी सब खुल जायेगा, अभी सब सामने आ जायेगा गुणस्थानों के हिसाब से, इसलिये टीका तक नहीं पढ़ते। केवल अमृत चन्द्र जी महाराज को पढ़ो और कुन्द कुन्द महाराज को पढ़ो क्योंकि उन्होनें ज्ञानी और अज्ञानी के अलावा किसी दूसरे शब्द का प्रयोग किया ही नहीं। इसलिये उसमें अपनी कमी सब दबी ढ़की रहती है और अपना ग्रुप बढ़ता रहता है। इसलिये सब चलता रहता है।

शंका– कर्म चेतना की विवक्षा में कर्मधारा का कथन करने में क्या बाधा है?

समाधान– देखो, कर्मचेतना की विवक्षा में कर्मधारा का कथन यदि हम करते हैं तो उसमें अशुभ कर्मधारा और शुभ कर्मधारा, दो कर्मधारा बनानी पड़ेगी क्योंकि आपके सामने शुभ कर्म भी किये जा रहे हैं और अशुभ कर्म भी किये जा रहे हैं। कर्मधारा का कथन करने से शुभोपयोग और अशु-भोपयोग सभी को ये कर्मधारा में ले लेते हैं। कर्मधारा कहने से क्या हो गया? वह सब कर्म धारा है क्या? आप व्रत आचरण कर रहे हैं, पूजा-पाठ कर रहे हैं, जितना भी क्रिया-काण्ड वह सब क्या हो गया, सब कर्मधारा में चला गया माने अशुभोपयोग की तरह हेयपना शुभोपयोग में आ जाता है, कर्मधारा कहने से।

अगर आप शुभोपयोग को कहेंगे तो आपके लिये वह शुभोपयोग में, आपके अन्दर कुछ अच्छा भाव बनेगा कि शुभोपयोग, शुद्धोपयोग के लिये कारण है। लेकिन कर्मधारा कहने से कोई कार्य-कारण की व्यवस्था नहीं बनती।

'अन्तर आ रहा है न समझ में' कर्मधारा में सब आ गया। जैसी अशुभ क्रिया वैसी ही शुभ क्रिया। एकदम ऐसे उपेक्षा करते हैं- 'अरे, पूजा करना, ये क्या है? भक्ति करना, ये क्या है? ये तो सब कर्मधारा है, व्रत ग्रहण करना, परिग्रह छोड़ना, ये भी कर्मधारा है। ज्ञानधारा की बात करो, ज्ञानधारा से संवर निर्जरा होनी है। कर्मधारा से बंध होना है, क्यों उस कर्मधारा में पड़े। ज्ञानधारा की बात करो। ये चलन चला हुआ है। तो इसलिये इस कर्मधारा

का समर्थन करना ही नहीं, इस कर्मधारा से दूर हो जाओ। अशुभोपयोग, शुभोपयोग, शुद्धोपयोग, कर्मफल चेतना, कर्मचेतना, ज्ञानचेतना इसको इस रूप में व्याख्यायित करके चलोगे तो अपनी सुरक्षा है, नहीं तो ये सब कर्मधारा में सब धारा बहती जायेंगी और इस पर 144 लगाना बहुत मुश्किल पड़ रही है। 'शान्तिधारा, वह शान्तिधारा भी इसलिये की जाती है कम से कम ये कर्मधारा के वायरस कम रहें।'

शंका– ज्ञानचेतना में ज्ञानधारा घटित करें तो क्या बाधा है?

समाधान– बात वो्ह ही है, देखो, ज्ञानचेतना जब हम बात करेंगे तो एक उसका स्तर बनता है। सातवें गुणस्थान से ज्ञानचेतना की शुरूआत होती है और ज्ञानधारा तो सर्वत्र बह रही है। ज्ञानधारा तो मिथ्यादृष्टि में भी बह रही है और सम्यग्दृष्टि में भी बह रही है। उस ज्ञानधारा में क्या बहेगा, बताओ।

शंका– अमृत चन्द्र स्वामी की जो विवक्षा है वहाँ, तीन स्वामियों में विभाजन किया है, कर्म फल चेतना को स्थावरों में, कर्म चेतना को त्रसों में, ज्ञान चेतना को **पाणिक्क मदिकंता** में करके उन्होने चूलिका के रुप में विषय उपस्थित किया है लेकिन यहाँ स्वामित्व की अपेक्षा देखेंगे तो जैसे शुभ-अशुभोपयोग घटित किया तो वहाँ जाकर ज्ञान में कौन सी अशुभता आना? ज्ञान चेतना में।

समाधान– चूलिका में उन्होंने भी शुद्धोपयोग की दशा में ज्ञान चेतना मानी है। हाँ **पाणिक्कमदिकंता** इस व्याख्या में नहीं। इसलिये तो हमने पहले कहा था, ये व्याख्या अलग और ये जो हम व्याख्या कर रहे हैं चूलिका के हिसाब से व्याख्या कर रहे हैं। वह व्याख्या अलग है। उस व्याख्या में भी मालूम, लोग क्या करते हैं, उसमें भी गौण रूप से ज्ञान चेतना को मानकर चलते हैं जबकि वहाँ पर कोई ऐसी मुख्य-गौण की व्यवस्था नहीं है। वहाँ पर आचार्य कुन्दकुन्द देव का अभिप्राय बस जो बताया गया है उतना ही है।

शंका– कुन्दकुन्द स्वामी की विवक्षा को कर्मफल और कर्मफल चेतना को मुख्य करके रखे तो कर्मधारा बोलने में कोई बाधा नहीं आयेगी, फिर?

समाधान– कर्मधारा बोलने से सारी की सारी चेतना, ज्ञान चेतना लुप्त

हो जाती है। कर्मधारा कहने से ही जो अपना सभी शुभोपयोग है सब लुप्त हो जाता है। आपके बारह व्रत, अट्ठाईस मूलगुण ये सब कर्मधारा में चले जाते हैं।

कर्मधारा शब्द अपने आप में इतना ज्यादा हीन भावना से देखा जाता है कि उस कर्मधारा को कहते ही सभी व्रतों और संयम का लोप हो जाता है। सब कर्मधारा में आता है। हम उस धारा से बिल्कुल भी अलग हटना नहीं चाहेंगे तो फिर अपनी ये धारा जो चल रही है फिर ये बाधित हो जायेगी इसलिये उस कर्मधारा को आचार्यों ने जब नहीं कहा है तो हम उन चीजों का समर्थन ही न करें।

कहीं ये शब्द ही नहीं आते, ज्ञानधारा, कर्मधारा आचार्यों प्रणीत ग्रन्थों में, बताओ, कहीं आते हो तो, नहीं आते, क्यों अलग से ये चीज आ गयी। ये सब इसलिये कि जितना भी बाहरी क्रियाकलाप है, उसको सब बहा दो, कर्मधारा में और बस जो ज्ञानधारा अपने को दिखती नहीं, उसमें आह-ऊह करते हुए, उसमें लीन रहो, इसका नाम ये है। ये बहुत बड़ी बड़ी साजिशें हैं जो खेली जा रही हैं, आज से नहीं, बहुत पहले से चल रही हैं।

अगर अभी भी हम साजिशों को नहीं समझेंगे तो अपने ये साहित्य में और इस साहित्य का ज्ञान रखने वाले लोगों के अन्दर सम्यग्ज्ञान नहीं होगा और वह भ्रम में रहते हैं। बहुत सारे लोग भ्रमित रहते हैं। पढ़-लिखने के बाद भी, पंचास्तिकाय, समयसार, सब पढ़ लेते हैं लेकिन यह भ्रम नहीं टूटते। जब उनके सामने आप पहुँचते हैं तो आप भी उनको उत्तर नहीं दे पाते क्योंकि आपके अन्दर अपनी उस बात को कहने की दृढ़ता नहीं है, इस कारण से। इसलिये ये जो चीजें हैं इनको हम गहराई से समझें। आगे और भी चिन्तन करेंगे।

3. देशना लब्धि

पंच लब्धियों का क्रम चल रहा था क्षायोपशमिक लब्धि और विशुद्धि लब्धि को हमने पिछले दो दिनों में समझा है। जब जीवात्मा के लिये इन दो लब्धियों की प्राप्ति होती है उसके बाद में अगर किसी ऐसे रसायन की प्राप्ति हो जाये जो रसायन इस आत्मा से कर्म मलों को तो अलग कर ही दे लेकिन उस आत्मा के अंदर ऐसा ज्ञान भाव उत्पन्न करे कि जिस ज्ञान भाव को धारण करके आत्मा केवलज्ञान की उत्पत्ति कर ले वह लब्धि यह योग्यता जिनके पास में हो उनका सान्निध्य मिलना जरूरी है। जिनके अंदर 6 द्रव्य 9 पदार्थों का ऐसा ज्ञान आत्मसात् हो चुका हो कि उस ज्ञान को धारण करने के साथ-साथ उस ज्ञान से परिणत हो गये हों और उस परिणती को जब हम देखें, उस परिणती का हमें लाभ मिल जाये तो आचार्य कहते है कि वह आचार्य, उपाध्याय और साधु का मिलना भी देशनालब्धि है। लब्धिसार ग्रंथ में कहा है-

छदव्वणवपयत्थोवदेसय-सूरिपहुदिलाहो जो।
देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु ॥ [ल.सा. 6]

अर्थात्- छह द्रव्य, नवपदार्थ का उपदेश करने वाले आचार्यदि का लाभ, उनके उपदेश की प्राप्ति अथवा उपदेशित पदार्थ को धारण करने की प्राप्ति तृतीय देशनालब्धि

6 द्रव्य 9 पदार्थ के जो उपदेशक 'सूरि पहुदि लाहो' अर्थात् आचार्य आदि का लाभ हो जाना यह देशना लब्धि कहा जाता है। केवल हमें आचार्य आदि के लाभ से देशना की प्राप्ति हो सकती है। ये देशना लब्धि जो हमें केवल आचार्य आदि के सान्निध्य से और उनके देखने मात्र से, दर्शन मात्र से जो लब्धि प्राप्त होती है यह भी हमारे लिये एक मौन पूर्वक देशना लब्धि हो सकती है।

अवागविसर्गं वपुषा मोक्षमार्गं निरुपयन्तः-

अर्थात् मोक्ष मार्ग का निरूपण बिना कुछ बोले हुये भी आचार्यवर कर देते

है। वह आचार्य परमेष्ठी के साथ उपाध्याय और साधु परमेष्ठी का दर्शन वह भी हमारे लिये सम्यग्दर्शन का कारण बन जाता है। 10 प्रकार के सम्यक्त्व में मार्ग सम्यक्त्व भी आता है जिसमें हमें जो मार्ग पर रहे है उनका लाभ हो जाये, उनका सत्संग मिल जाये उससे भी हमें सम्यग्दर्शन का भाव उत्पन्न हो जाता है, वह भी हमारे लिये एक देशनालब्धि है। सम्यकदर्शन की प्राप्ति के लिये **'तन्निसर्गादधिगमाद्वा'** से भी सम्यग्दर्शन हो रहा है और अधिगम से भी होता है। निसर्ग से यदि सम्यग्दर्शन हो रहा है तो उसमें उपदेश की अपेक्षा नहीं रहती और अधिगम सम्यग्दर्शन उसे कहते है जहाँ पर हमें उपदेश दिया जाये। हमें ऐसा लगता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जो करण लब्धि के बाद होने वाली है उससे पहले ही निसर्गज और अधिगमज की भूमिका बनती है। वह निसर्गज और अधिगमज की भूमिका इस देशना लब्धि से बनती है। अगर उस देशना लब्धि के समय पर केवल हमें 6 द्रव्य, 9 पदार्थ के उपदेशक आचार्य आदि का लाभ हो जाये तो वह हमारे लिये निसर्गज सम्यग्दर्शन में कारण बनता है और अगर उनका हमें उपदेश मिल जाये तो वह हमारे लिये अधिगमज सम्यग्दर्शन। पहली बार जब कभी भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी तो उसके लिये पांचों लब्धियाँ आवश्यक है और उन पांचों लब्धियों में देशना लब्धि भी आवश्यक है। देशना लब्धि में दोनों प्रकार के भाव आ जाते हैं निसर्गज से भी सम्यग्दर्शन प्राप्त होता और अधिगमज से भी। अगर हम केवल **लब्धिसार** इस महाग्रंथ की इस गाथा को देखें, इसके पूर्व चरण को देखें तो उन्होंने पहले तो इतना ही लिखा है कि 6 द्रव्य, 9 पदार्थ इनके उपदेशक आचार्य आदि का लाभ होना यह भी देशना लब्धि है। उनका लाभ मिल जाना, उनका सान्निध्य होना मिल जाना। ऐसा नहीं लिखा कि वो उपदेश ही दें, ऐसा जरूरी नहीं है कि वो 6 द्रव्य से परिणत हैं तो उपदेश देंगे। बिना उपदेश के भी वह देशना लब्धि हमें इस गाथा सूत्र से मिलती है। यहाँ पर केवल उपदेशक सूरि आदि का लाभ लिखा है यदि वह लाभ हमारे लिये होता है, उससे हमारी सम्यग्दर्शन की भूमिका बनेगी वो कहलायेगा निसर्गज सम्यग्दर्शन। आप के लिये ये भी हो सकता है। कई लोगों की ये भी अवधारणा है कि जब भी कभी पहली बार सम्यग्दर्शन होता है तो वह अधिगम सम्यग्दर्शन ही होता है। अधिगम का अर्थ होता है उपदेश पूर्वक। पर उपदेश के द्वारा हमारे लिए 6 द्रव्य का

उपदेश मिलता है। वही प्रायः देशना लब्धि मानी जाती है। लेकिन यहाँ ऐसा भी भाव प्रकट होता कि 6 द्रव्य और 9 पदार्थ का ज्ञान किये बिना भी हम ऐसे सूरि आदि का लाभ यदि प्राप्त कर लेते है तो वह भी हमारे लिये सम्यग्दर्शन की भूमिका बना सकता है। निसर्गज सम्यग्दर्शन है तो जरूरी नहीं कि पहले हमने अधिगमज सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हो बाद में निसर्गज सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो। कई विचारकों का, कई मनीषियों का ऐसा भी अभिप्राय रहता है कि अगर आपके लिये निर्सगज सम्यक्त्व की प्राप्ति हो रही है तो उससे पहले आपने कभी न कभी पूर्वभव में अधिगमज प्राप्त किया है। पूर्व भव की अपेक्षा तो वह सम्यग्दर्शन अधिगमज ही है और वर्तमान में आपके लिये उपदेश नहीं मिल रहा, आपने जिनबिंब देखा, जिनरूप देखा, केवल आपको इतना देखने मात्र से सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया तो वह आपका निसर्गज तो है लेकिन वह इस भव की अपेक्षा निर्सगज हो गया। पूर्वभव की अपेक्षा हम देखेंगे तो कभी न कभी इस जीव ने 6 द्रव्य, 9 पदार्थ का ज्ञान लिया होगा। ऐसा भी कई लोगों की अवधारणा है, वह भी रहे लेकिन यहाँ पर हम देशना लब्धि की जिस गाथा का पढ़ रहे हैं, उस गाथा को पढ़के मन में ये विचार आया कि यहाँ पर आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी उनका यहाँ लाभ बताया है। उसके बाद उन्होंने देशना दी एक शब्द आया है **देसिदपदत्थ** और टीका में भी उन्होंने इसी प्रकार लिखा है कि देशित पदार्थ यानि जो उपदेश दिया है। फिर बाद में उन्होंने कहा है कि उपदेशित पदार्थ के लाभ को अपने अंदर धारण कर लेना। उपदेशित पदार्थ को हमने अपने अंदर ग्रहण कर लिया वह भी देशना लब्धि है। **दे-सदि-पदत्थ-धारण-लाहो-वा,** यहाँ 'वा' शब्द भी एक विकल्प वाचक होता है, 'वा' शब्द भी अथवा के रूप में प्रयोग में आता है। अथवा इससे भी हमें देशना लब्धि होती है। जब देशना धारण कर लेते हैं तो उससे भी हमें सम्यग्दर्शन है। अधिगम भी हमारे लिये सम्यग्दर्शन का कारण है और सान्निध्य से भी हम विशुद्धि बढ़ा लेते हैं। वह विशुद्धि जो प्रायोग्य लब्धि के काम में आ जाये उसके लिये कारण बन जाये तो वह विशुद्धि, ऐसा नहीं है कि हम उपदेश सुनें तभी वह विशुद्धि कारण हो। यह इस गाथा के अभिप्राय से हम अपना भाव कह रहे हैं। आपके लिये चिंतन दे रहे हैं। मनन करना है कि वह विशुद्धि कभी-कभी हमें भी जब एक तरह से हम अपने मन में

क्षयोपशम और विशुद्धि लब्धि को लिये हुये बैठे हो और उसी समय में हमें ऐसा कोई सान्निध्य मिल जाये और हमारे आंखों से आंसू निकल आयें, हमें पाप का प्रायश्चित हो जाये, हमें कोई समझाने वाला भले ही न हो तो भी हमारे लिये प्रायोग्यलब्धि में पहुंचाने हेतु देशना लब्धि बन सकती है। फिर हमें इस देशना लब्धि से क्या करना है? अपनी विशुद्धि को बढ़ाना है और इतनी बढ़ाना है कि प्रायोग्य लब्धि में जो अंतःकोड़ाकोड़ी की स्थिती बनती है उस स्थिति तक हमको लेकर आना है। कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी देखने में आ जाते हैं कि सिंह की पर्याय में मुनिमहाराज ने उस सिंह के लिये पहले सम्यग्दर्शन या कोई 6 द्रव्य, 9 पदार्थ का व्याख्यान नहीं कराया। बस! उससे इतना ही कहा कि अरे! सिंह! तू क्या कर रहा है? मांस खाता है। तेरी आगे भवितव्यता इतनी अच्छी होने वाली है कि तू आगे चलकर तीर्थंकर बनेगा और वर्तमान में इतना निंद्य कार्य कर रहा है। इतना कहते ही उस सिंह की आंखों में आंसु आ गये, पश्चाताप से भर गया और अंतरंग में ऐसी विशुद्धि उत्पन्न हो गई। उसी के लिये आचार्य कहते हैं कि उसे सम्यग्दर्शन का लाभ हो गया। ये 6 द्रव्य, 9 पदार्थ उन मुनिराज ने उस सिंह को नहीं पढ़ाये। लेकिन वह सम्यग्दर्शन का लाभ हो गया। वहाँ पर देशित पदार्थ नहीं था लेकिन इस देशित पदार्थ का लाभ देने वाले सूरि आदि का लाभ उसको मिल गया। इसलिये हमें यह भी समझ में आता है कि दो प्रकार का सम्यग्दर्शन कहा है कि निसर्ग से भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है और अधिगम से भी उत्पन्न होता है। अगर हम एक ही अर्थ लगाकर चलेंगे तो फिर 2 प्रकार के सम्यग्दर्शन की बात ही नहीं कहनी चाहिये क्योंकि जब भी सम्यग्दर्शन होगा अधिगमज ही से होगा, पर उपदेश से ही होगा। दो प्रकार से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है इसलिए 'ज' प्रत्यय लगा है। निसर्गज और अधिगमज निसर्ग से उत्पन्न होने वाला सम्यग्दर्शन और अधिगम से उत्पन्न होने वाला सम्यग्दर्शन। अब विद्वान लोग उसको सुधारने के लिये कि वह निसर्ग से उत्पन्न होने वाला सम्यग्दर्शन तो पहले भव का है, उसमें देशना सुन रखी हो, ऐसा उसे होगा उसके लिये कहते हैं। क्या प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये निर्सगज से हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती है? क्योंकि निसर्ग यानि पर उपदेश का अभाव और जब पर उपदेश नहीं है तब हमें समझना है कि वहाँ पर देशना लब्धि है। कभी-कभी विद्वनों

में ये भी विचार आ जाता है कि पर उपदेश नहीं है तो देशनालब्धि के बिना सम्यक्त्व हो गया? नहीं! देशना लब्धि है लेकिन वह उपदेशात्मक ही देशना हो यह जरूरी नहीं है, वह देशना केवल आचार्य, उपाध्याय, साधु का लाभ होने पर भी हो जाती है।

ऐसे निसर्गज और अधिगमज को प्राप्त करने के लिये यहाँ पर इस विशुद्धि को बढ़ाया जा रहा है। आचार्य कहते हैं **श्री धवल जी** पुस्तक में, वहाँ पर इस भाव को खोला है तो कहते है **"ताए देसवाए परिणद आयारादि उवलंभो"** यानि उस देशना से परिणत आचार्य आदि की उपलब्धि होना, उनका लाभ होना, इसका नाम देशना लब्धि है। उस परिभाषा को देखकर यह स्पष्ट होता है कि वहाँ पर आचार्य आदि इस देशना से परिणत हैं। मतलब वो देशना दे रहे हैं लेकिन लब्धिसार की गाथा के पूर्वाध को पढ़ने से यह प्रकट नहीं होता है। ऐसे अनेक जीवों के लिये सम्यग्दर्शन होता पाया भी जाता है। कोई उनके लिये अधिगम नहीं हुआ सीधा-सीधा सान्निध्य मिला और उस सान्निध्य के माध्यम से ही उन्हें सम्यक्त्व का भाव उत्पन्न हो गया। 923 भरत के पुत्र थे, निगोद पर्याय से निकले और निगोद पर्याय से निकलने के बाद में भगवान के समवशरण में पहुंच करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति उनको हो गई। जरूरी नहीं कि उन्हें भगवान का उपदेश मिला। बाद में उन्हें उपदेश मिला। पहले उन्होंने भगवान का दर्शन कर लिया समवशरण में जाते हैं तो पहले ही समवशरण के मानस्तंभ को देखकर ही, जिनबिंब को देखकर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है तो वह सम्यक्त्व की प्राप्ति पहले होगी फिर आदिनाथ भगवान का दर्शन होगा। अब पहले मानस्तंभ के दर्शन से, जिनबिंब दर्शन से सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गई तो कौन सा हुआ निसर्गज या अधिगमज। हम उसे अधिगम तो कह ही नहीं सकते क्योंकि उससे पहले उन्होंने कोई त्रस पर्याय भी प्राप्त नहीं की, उन्हें साक्षात लाभ मिला और उन्हें निसर्गज सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। जब भी कभी सम्यग्दर्शन होगा तो 6 द्रव्य, 9 पदार्थ के उपदेश से ही हो, लेकिन ऐसा लगता है कि मनुष्यों के लिए तो 6 द्रव्य और 9 पदार्थ का उपदेश जरूरी है, तिर्यंचों के लिए नहीं। तिर्यंचों की एक अलग विशुद्धि होती है और मनुष्यों में भी, उन मनुष्यों के लिए जो पहले से त्रस पर्याय को प्राप्त किये हैं या पहले से बहुत ज्ञान प्राप्त किये हैं तो उनके लिए 6 द्रव्य, 9 तत्व का ज्ञान आवश्यक है और जो

बिल्कुल 923 जीव जैसे हो, कुछ नहीं जानते हों, बिल्कुल चुपचाप, मौन, मूक रहते हों तो उन्हें निसर्गज से भी सम्यग्दर्शन हो जाता है। बुद्धिमानी होना भी एक बहुत बड़ा खतरा है। क्या कह रहा हूं, ज्यादा बुद्धिमानी होने से हमारे लिए कोई चीज सीधी-सीधी कहो, अच्छी नहीं लगती, सीधी-सीधी समझाओ तो महाराज, 6 द्रव्य ये तो हम बालबोध कक्षा 1 से 5 तक पढ़ते आये हैं और अगर हम आपको 6 द्रव्य न बताये, उपदेश न दे तो देशना लब्धि अधूरी रहेगी। जब तक हम आपको न बताये द्रव्य 6 होते हैं और उस द्रवरु का वर्णन न करें तो देशना लब्धि आपको प्राप्त नहीं होगी और उस देशना लब्धि में हम सीधा-सीधा वर्णन कर दे-एक जीव द्रव्य है, एक अजीव द्रव्य है, एक धर्म द्रव्य है, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और एक काल द्रव्य है, क्या होगा आपको? इससे, आपको इस देशना से कोई भी लब्धि होने वाली नहीं है क्योंकि ये तो आप बहुत पहले सुन चुके हैं, बहुत पहले जान चुके हैं। देशना लब्धि कैसे हो? जब सभी 6 द्रव्यों को जानने वाले विद्वान यहाँ बैठे हैं तो उन्हें देशना लब्धि का लाभ कैसे हो? द्रव्य का वर्णन अब उनके सामने कैसे हो?

द्रव्य के सामान्य, विशेष गुण-

जैन सिद्धांत प्रवेशिका से हमने पढ़ रखा है, द्रव्य के सामान्य गुण होते हैं, विशेष गुण होते हैं और उन द्रव्य के सामान्य गुणों में सबसे पहला आता है, अस्तित्व गुण। हम थोड़ा सा इसका भी व्याख्यान कर लें। अस्तित्व गुण का अर्थ है, द्रव्य के अंदर उसका एक ऐसा गुण प्राप्त हो जाना, जिस कारण से उस द्रव्य का एक अस्तित्व हमेशा बना रहे। उस द्रव्य का एक गुण जिसे कहा गया अस्तित्व गुण, उस अस्तित्व के कारण से ही हमारी सत्ता बनी हुई है हमारा अस्तित्व बना हुआ है हम यहां हैं, ये हमारे लिए अस्तित्व गुण के कारण से है। हम इससे पहले भी थे, ये अस्तित्व भी हमे अस्तित्व गुण के द्वारा ज्ञात होता है और हम आगे भी रहेंगे ये भी हम अस्तित्वगुण के द्वारा ही जान सकते हैं। ये द्रव्य त्रैकालिक अवस्था में हमेशा-हमेशा बना रहता है, किसके माध्यम से? अस्तित्व गुण के कारण से। ये पहला गुण हो गया। दूसरा वस्तुत्व गुण होता है, वस्तुत्व गुण का अर्थ है कि वह वस्तु जो सामान्य और विशेष रूप से है, सामान्य और विशेषात्मक वस्तु को कहा

गया है। सामान्य और विशेष धर्म को कहने वाला भी एक धर्म है जिस कारण वस्तु में सामान्यपना और विशेषपना दोनों बने रहते हैं। वस्तुत्व गुण की परिभाषा में ये परिभाषा नहीं की जाती है, क्या लिखा रहता है? जो अर्थ क्रिया करने में समर्थ हो अथवा जिसकी अर्थ क्रिया देखी जाती है, वो अर्थ क्रिया किसके कारण होती है तो वह वस्तुत्व गुण के कारण से होती है जबकि हम थोड़ा सा **आलापपद्धति** आदि पढ़ते हैं तो **सामान्य विशेषात्मक वस्तु** ये परिभाषा लेनी चाहिये कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती है। वस्तु कोई भी हो, कोई भी द्रव्य हो, सामान्य और विशेष दोनों धर्म धारण करना यह वस्तुत्व गुण का कार्य है। बहुत अच्छी परिभाषा होगी यह। अर्थ क्रिया भी उसी में बनती है जिसमें सामान्य और विशेष धर्म होता है लेकिन अर्थ क्रिया करने से हमारी दृष्टि किसी क्रिया की ओर चली जाती है या हम उस द्रव्य के उपयोग की ओर चले जाते है जब हम उस वस्तु के सामान्य और विशेष धर्म का वर्णन करने वाला कोई गुण उसमें बता देते हैं तो सामान्य और विशेष इन दोनों के सम्बन्ध में लोगों को ये भ्रम रहता है कि कहीं-कहीं पर सामान्य धर्म होता है, कहीं पर विशेष धर्म होता है। **आचार्य समंतभद्र महाराज** ने इस सामान्य और विशेष की सत्ता को **स्वयम्भू स्तोत्र** में न्याय के माध्यम से बताया है कि हम वस्तु के अंदर सामान्य विशेष गुण माने और यदि पहले से हम जैन दर्शक में समझा दे कि वस्तु के अंदर वस्तुत्व गुण के कारण सामान्य और विशेष धर्म रहते हैं तो आगे न्याय की व्यवस्था सरल हो जायेगी। यह वस्तुत्व गुण हो गया। तीसरा द्रव्यत्व गुण जिस द्रव्यत्व गुण के कारण आत्मा अपनी ही स्वभाव और विभाव पर्यायों को पहले भी प्राप्त किया है, अभी भी प्राप्त कर रहा है और आगे भी प्राप्त करता रहेगा। ये जो इसके अंदर द्रव्यत्व शक्ति, परिणमन की शक्ति बनी हुई है वह उसका द्रव्यत्व गुण है। द्रव्यत्व गुण के माध्यम से प्रत्येक द्रव्य सतत् परिणमनशील है। Everything is changeable in this world किसके आधार पर? जो Einstein ने कहा कि द्रव्यत्वगुण की शक्ति के आधार पर। जो जैन दर्शन में पहले ही कहा है। कोई भी द्रव्य होगा हमेशा परिणमन करने वाला है और परिणमन का स्वभाव इस द्रव्यत्व गुण के कारण है। जो उस द्रव्य में रहता है। यह द्रव्यत्व गुण होने के बाद में अब आता है-प्रमेयत्व गुण- प्रमेयत्व गुण का अर्थ है- वस्तु किसी न किसी ज्ञान का विषय होगी।

उस वस्तु को कोई न कोई जानेगा। छद्मस्थ ज्ञान से जाना जाये, चाहे केवलज्ञान से जाना जाये वह वस्तु के अंदर ऐसी क्षमता है कि वह किसी न किसी ज्ञान का विषय अवश्य बनेगी। इसलिये कोई भी ज्ञेय पदार्थ ऐसा नहीं जो किसी ज्ञानी के ज्ञान का विषय न बनता हो। यह सामान्यगुण है लेकिन इन सामान्य गुणों के माध्यम से भी हमें वस्तु के स्वभाव का ज्ञान हो जाता है। जिसके माध्यम से हम प्रत्येक द्रव्य के स्वतंत्र परिणमन को बहुत अच्छे से समझ सकते हैं, देख सकते हैं। प्रत्येक द्रव्य का वह स्वतंत्र परिणमन अपने-अपने गुणों के माध्यम से हो रहा है और उसमें वह प्रमेयत्व गुण भी बहुत ही अच्छा गुण है। कई लोग जब इन सामान्य गुणों का वर्णन करते हैं तो इतने ज्यादा आत्मनिष्ठ होकर वर्णन करते हैं कि सामान्य गुणों को ही वे विशेष गुण बना देते हैं। कई बार हमें ऐसा भी पढ़ने में आया है कि केवलज्ञान के अंदर जो ज्ञान है उसमें प्रमेयत्व गुण के कारण से वस्तु का परिणमन दिखाई दे रहा है। जो वस्तु जानी जा रही वह वैसी ही जानी जा रही है जैसा उसके अंदर परिणमन होना है, प्रमेयत्वगुण के कारण से। प्रमेयत्वगुण के कारण वस्तु ज्ञान का विषय बन रही है, जिस ढंग से उस वस्तु का परिणमन होना है यानि की आगामी पर्यायें भी जो केवलज्ञान में दिखाई दे रही हैं वो इस प्रमेयत्व गुण के कारण फिक्स हो गई हैं, ऐसा भी अत्यधिक अध्यात्म को पढ़ने वाले लोगों के माध्यम से सिद्धांत बन जाता है। आगे कहते हैं, आचार्यों की परिभाषा में देखते हैं तो न गुरु न लघु इति अगुरुलघु इससे कोई भी बात solve नहीं होती।

अगुरुलघु गुण क्या है?

परिभाषा में हिन्दी में पढ़ने को मिलता है- एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता है। एक द्रव्य के गुण जो बिखर-बिखर नहीं जाते उन गुणों को एक साथ रखने का काम यह अगुरुलघु गुण करता है, ऐसी परिभाषा हिन्दी में लिखी मिलती है। **जैन सिद्धांत प्रवेशिका** में भी यही लिखा है कि जिसके कारण से द्रव्य के गुण बिखरते नहीं और एक द्रव्य के गुण उसी में बने रहते हैं यह अगुरुलघु गुण है।

अब द्रव्य के गुण और उन गुणों का नहीं बिखरना ये अगुरुलघु गुणों के

माध्यम से कहाँ आया? हमें इन सामान्य गुणों की परिभाषा भी आचार्य प्रणीत ग्रंथों से खोजना है और खोजते हुये हमें अमृतचंद्रमहाराज की एक वार्तिक मिली उसमें उन्होंने लिखा कि **अगुरुलघुत्वअभिधानस्य स्वरूप-प्रतिष्ठत्वनिबंधनस्य** यानि अगुरुलघु गुण क्या करता है? स्वरूप में प्रतिष्ठा बनाये रखता है। यानि स्वरूप में उस द्रव्य को रखे रखता है। इससे यह स्पष्ट है- जो द्रव्य अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है, स्वरूप में जिस धर्म में स्थित है- जो द्रव्य अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है, स्वरूप में जिस रुप में स्थित है-उस द्रव्य को वैसे ही बनाये रखने का काम अगुरुलघु गुण का है। हो सकता है इसी परिभाषा को बढ़ाते-बढ़ाते विद्वानों ने उसको इस तरह से व्याख्यायित किया। जब प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है तो उस द्रव्य का दूसरे द्रव्य से कोई लेना देना नहीं है। जिस कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से जुदा रहे वो अगुरुलघु गुण माना जाता है। कई लोग कहते हैं- और जिस कारण एक द्रव्य के गुण बिखरे नहीं वह भी अगुरुलघु गुण के माध्यम से होता है ऐसा भी कुछ विद्वान कहते है। लेकिन इन सबसे हट करके आचार्यप्रणीत परिभाषा है वो यह है कि प्रत्येक द्रव्य जिसके कारण अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहे, स्थित बना रहे यह अगुरुलघु गुण का कार्य है। यह परिभाषा आचार्य प्रणीत परिभाषा है। इस अगुरुलघु गुण का व्याख्यान भी आध्यात्मिक लोग इस ढंग से करते हैं कि इस अगुरुलघु गुण के कारण से ही एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता है। इतनी ज्यादा बढ़ गई है, यह अगुरुलघु गुण की परिभाषा। आप देखना कभी उनको भी पढ़ना, वो सामान्य गुणों को किस तरह पढ़ाते हैं? इस अगुरुलघु गुण के कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। दूसरे द्रव्य के लिये कभी भी काम में नहीं आता, अगुरुलघुगुण के माध्यम से सिद्ध करते हैं। इस तरह से केवलज्ञान में सब कुछ झलका उसी हिसाब से परिणमन प्रत्येक जीव का होना यह भी सामान्य गुण से सिद्ध होता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता यह भी सामान्य गुणों से सिद्ध कर देते हैं। जबकि इन सामान्य गुणों से ऐसी कोई सिद्धि नहीं होती। आचार्य कहते हैं जो द्रव्य जिस स्वरूप में है, जीव द्रव्य जीवद्रव्य के स्वरूप में ही रहेगा, यह काम स्वरूप में प्रतिष्ठित बनाये रखने का काम, अगुरुलघु गुण का है। हमें तो केवल इतना ही समझ में आता है। पुद्गल, पुद्गल के ही रूप में ही प्रतिष्ठित रहेगा। धर्म-द्रव्य धर्मद्रव्य के रूप में ही

प्रतिष्ठित रहेगा। कोई भी द्रव्य अपनी प्रतिष्ठा को नहीं छोड़ता। यह काम अगुरुलघु गुण का है। उस अगुरुलघुगुण का आज थोड़ा और विचार करें। एक चीज और आती है **अगुरुलहुआ अणंता** ये अगुरुलघुगुण अनंत हैं। हम इन अगुरुलघु गुणों को अनंत मानें कि एक मानें? वस्तु में एक गुण रहता है। हमें बताओ अस्तित्व वस्तुत्व गुण जैसे वस्तु के अंदर हैं ऐसे ही अगुरुलघु-गुण भी सामान्य गुण है। अगर वस्तु में अगुरुलघु भी अनंत हैं तो सभी गुण अनंत अनंत होना चाहिये। गुण अनंत होते हैं यह कहना अलग चीज और एक गुण अनंत संख्या में है यह कहना अलग चीज। आप समझना इस बात को। अस्तित्व गुण एक द्रव्य में अनंत कि अनंत गुण एक द्रव्य में अनंत। यदि एक अगुरुलघु गुण अनंत है तो फिर सभी द्रव्यों में हमें अनंतपना मानना पड़ेगा। किसी के लिये अनंत नहीं लिखा सिर्फ अगुरुलहुआ अनंता, ये अगुरुलघु गुण अनंत हैं, ऐसा लिखा है, तो उसका समाधान भी **आचार्य अमृतचंद्रजी महाराज** की ही टीका से, **जयसेन जी महाराज** की टीका से उसी गाथा में मिलता है। वो अगुरुलघु गुण अनंत नहीं है। अगुरुलघु गुण तो एक ही है उसके अंदर जो अविभागी प्रतिच्छेद हैं जो उसके शक्ति अंश हैं, उन अविभागी प्रतिच्छेदों की अपेक्षा उन अगुरुलघु गुण को अनंत कहा गया है। अगुरुलघु गुण का कार्य क्या है? अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेद अनंत है, उनके शक्ति अंश अनंत है। अगुरुलघु गुण का विकार यानि कार्य स्वभाव पर्याय है। वही अर्थ पर्याय है। छह वृद्धि और छह हानि रुप होने से वह बारह प्रकार की है। अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, और अनन्त गुण वृद्धि ये छह वृद्धियाँ हैं। इसी तरह अनन्त भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि, अनंत गुण हानि ये छह हानियाँ हैं। अगुरुलघुगुण का विकार यह स्वभाव पर्याय है। जो अर्थ पर्याय आप कहते हैं, वह अर्थपर्याय किससे बनती है? अगुरुलघु गुण के माध्यम से बनती है मुख्य बात तो ये है कि अगुरुलघुगुण में अगर अनंत अविभागी प्रतिच्छेद की शक्तियाँ है तो सभी गुणों में अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद की शक्तियाँ हैं। या अनंत न होकर के केवल संख्यात, असंख्यात अविभागी प्रतिच्छेद की शक्तियाँ है? ये हमें सिद्ध करना होगा हमारे पास अभी ऐसा कोई आगम नहीं है जिससे हम ये कह सके कि प्रत्येक गुण में

अनंत अविभागी शक्तियों होती हैं। असंख्यात भी हो सकती हैं और संख्यात भी हो सकती हैं। गुण वृद्धि और गुणहानि जरूरी नहीं कि अनंत गुण वृद्धि और अनंतगुण हानि हरेक गुण में हो असंख्यात गुणवृद्धि असंख्यात गुण हानि संख्यात गुणवृद्धि संख्यात गुण हानि संख्यात गुण हानि तक भी कोई द्रव्य का परिणमन सीमित हो सकता है लेकिन इस विषय में हमारे सामने कोई आगम नहीं। हाँ इतना जरूर है कि धवला पुस्तक 13 पृ. 263 पर कहा है कि "जीव के सब गुणों के अविभाग प्रतिच्छेद संख्या में समान नहीं होते हैं।" अगुरुलघुगुण के लिये अनंत शक्तियंश कहा है उसमें 6 गुणी वृद्धि और 6 गुणी हानि से उस गुण का परिणमन होता है और उसके माध्यम से जो पर्याय निकलती है उसे **अर्थ पर्याय** कहते हैं। उसमें भी एक विशेष बात ये है कि जो पर्याय उत्पन्न हो रही वो पर्याय **षड्गुण वृद्ध्या उत्पादः** और जो पर्याय नाश को प्राप्त हो रही है **षड्गुणहान्याः विनाशः** कही पढ़ा है? आपने! नया सा लग रहा है। उत्पाद और व्यय दोनों उस पर्याय में हो रहे हैं और दोनों पर्यायों के लिये कारण क्या है? वृद्धि तो उत्पाद के लिये कारण है और जो हानि है वह उसके नाश के लिये कारण है। इसका मतलब यह हो गया कि उत्पाद रूप जो पर्याय वह प्रत्येक द्रव्य की है वह उसकी षड्गुणी वृद्धि के माध्यम से बनती है। हानि जो बनती है वह विनाश है। हम आपको इसलिये बता रहे है कि आप ये मत समझना जो बताया जा रहा है वह सब कुछ अपने मन से बताया जा रहा है। एक वार्तिक हमको मिली कार्तिकेय अनुप्रेक्षा की टीका में हमें ये पढ़ने को मिला। षड्गुणवृद्धि से उत्पाद होता है और षड्गुणहानि से विनाश होता है।

' उत्पादः अगुरुलघु गुणस्य षड्गुणवृद्धया, व्ययः तस्य षड्गुणहान्या'
(का. अनु. टीका गाथा २३७)

टीका बहुत छोटी लिखी गई है, पतले-पतले अक्षर में है लेकिन आप उसको बारीकी से पढ़ना ये आपको मिलेगा इससे भी फलित होता है कि प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद और व्यय जो प्रति समय चल रहा है उसके लिये हानि और वृद्धि ही कारण हैं। अब इस हानि और वृद्धि के माध्यम से जो परिणमन है वह परिणमन अगुरुलघुगुण का है इसलिये वो परिणमन हमारा स्वाभाविक परिणमन है या वैभाविक परिणमन के रूप में है?

1. अगुरुलघुगुण जिसके माध्यम से हमेशा उत्पाद-व्यय चलता रहता है, हमेशा द्रव्य परिणमन करता रहता है, वह अगुरुलघुगुण है।

2. अगुरुलघुगुण वह है जो शुद्ध द्रव्यों में ही पाया जाता है उसकी पर्याय ही शुद्ध अर्थपर्याय होती है

3. अगुरुलघुनाम का कर्म है जिसके कारण इस जीव का शरीर न अत्यधिक हल्का होता है न भारी होता है। आचार्यों के वर्णन में **राजवार्तिक** में भी लिखा मिलता है कि जो स्वाभाविक अगुरुलघु गुण है वह मात्र सिद्धों में ही पाया जाता है। इससे क्या फलित हुआ कि अशुद्ध अवस्था में अगुरुलघुगुण वैभाविक रूप में होता है उसी के माध्यम से अर्थ पर्याय निकलती है। अगुरुलघुगुण का काम अर्थ पर्याय को निकालना है।

द्रव्य, पर्याय की शुद्ध अशुद्धता का वर्णन-

कभी कभी यह भी गलती होती है कि द्रव्य तो अशुद्ध बना रहता है, पर्यायें शुद्ध निकल रही हैं। सुन रहे हो! अत्यधिक अध्यात्म पढ़ने वाले द्रव्य, गुण, पर्याय की चर्चा करते है, सामान्य गुणों को विशेष बना देते हैं कि पर्यायें तो ऊपर-ऊपर तैरती हैं और उस पर्याय में वर्तमान का अशुद्ध परिणमन होते हुये भी वह परिणमन द्रव्य का भले ही अशुद्ध है लेकिन उसकी पर्याय तो शुद्ध है क्योंकि कहीं-कहीं पर उन्हें पढ़ने को मिल जाता है जो हमारे अंदर रागद्वेष, मोह आदि कषायभाव है ये तो ऊपर तैरते हैं। तरंति ये आचार्य अमृतचंद्र जी का अध्यात्म है। यह अध्यात्म भी इतने ऊपर का है कि उन्होंने भी रागद्वेष, मोह आदि से होने वाले कषाय भावों को क्या कह दिये? ये सब आत्मा में है ही नहीं, ये तो सब आत्मा में ऐसे ऊपर-ऊपर तैरते है जैसे पानी के ऊपर काई शैवाल लगी रहती है। ऐसे वह आत्मा के ऊपर हमारे कषाय भाव तैरते हैं। क्या कह रहा हूं? कुछ भी कह लो अब जो ऊपर तैरना है उससे ये सिद्ध होता है कि आपके लिये वह द्रव्य की परिणती ऊपर-ऊपर तैर करके अशुद्ध द्रव्य में से शुद्ध पर्याय निकल सकती है। द्रव्य तो अशुद्ध होता ही नहीं द्रव्य तो त्रैकालिक शुद्ध है, फिर शुद्ध में से ये अशुद्ध पर्यायें कैसे निकल रही है? एक बात और नई आ गई। द्रव्य में अशुद्ध होता

ही नहीं। जब द्रव्य अशुद्ध होता ही नहीं तो शुद्ध द्रव्य में अशुद्ध पर्याय कहाँ से आ गई? नरनारकादि पर्याय शुद्ध हैं अथवा अशुद्ध बताओ? अब तो बोलो.... ये पर्याय का लक्षण नहीं है। पर्याय दो प्रकार की है- एक शुद्ध पर्याय, एक अशुद्ध पर्याय। स्वभाव पर्याय, विभाव पर्याय। आप किस रूप में हैं? ये पर्याय का लक्षण नहीं है। ये ऊपर-ऊपर तो पर्याय की परिणति बताई जा रही है कि वो पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है। क्या वो पर्याय इतनी ऊपर रहती कि उस शुद्ध द्रव्य में से वो पर्याय ऊपर-ऊपर है और अशुद्ध भीतर-भीतर द्रव्य दृष्टि से वो पर्याय ऊपर-ऊपर रहती कि पूरे समूचे द्रव्य में से वो पर्याय निकलती है? अखंडवृत्तया अपने स्वस्वप्रदेश से निकलती है, यह सिद्धान्त है।

अखंडवृत्ति से वह पूरे द्रव्य में है। ऐसा नहीं है कि उस शुद्ध द्रव्य में किसी एक कोने से अशुद्ध पर्याय निकल रही हो, किसी दूसरे कोने से शुद्ध पर्याय निकल रही हो अथवा ऊपर-ऊपर पर्याय की दृष्टि से देखे तो पर्याय अशुद्ध और द्रव्य की दृष्टि से देखे तो द्रव्य शुद्ध। नहीं! द्रव्य भी त्रैकालिक शुद्ध नहीं है। ये आप गलत कह रहे हैं। द्रव्य भी अशुद्ध है। यदि द्रव्य को आप शुद्ध मान लेंगे तो संसारी अवस्था में वह पर्याय भी अशुद्ध निकलेगी। वर्तमान में संसारी जीव का जीव द्रव्य अशुद्ध है। त्रैकालिक शुद्ध वह उसकी शक्ति की अपेक्षा से है। अभिव्यक्ति की अपेक्षा तो वर्तमान में वह द्रव्य भी अशुद्ध है। यह अपने कथन और Add करो। जो **शुद्धाशुद्ध पर्यायों का समूह द्रव्य है**, यह कथन जो आता है, वह कैसे घटित करेंगे?

जो पर्याये अशुद्ध रूप में निकल चुकी है उन सबका भी समूह बना लो और जो पर्याये आगे उस शुद्ध द्रव्य में निकलेगी उनका भी समूह बना लो सब समूह का मिलाने का नाम द्रव्य है क्योंकि द्रव्य की कोई पर्याय कभी भी अलग से नहीं निकलती। पर्याय से अलग द्रव्य नहीं, द्रव्य से अलग पर्याय नहीं। त्रिकालवर्ती पर्यायों के समूह को द्रव्य कहा है। आचार्य समन्तभद्र जी आप्त मीमांसा में कहते हैं - अब त्रिकालवर्ती पर्याय में अशुद्ध भी परिणमन है जीव का और शुद्ध भी परिणमन है। एक साथ शुद्ध और अशुद्ध पर्याये नहीं होती। एक बार में तो जीव की एक ही पर्याय होगी आप उसको अशुद्ध मानो या शुद्ध मानो। द्रव्य की पर्याय तो एक ही होगी जो अनंत गुण है

उनकी भी सब पर्याय होगी।

अनंत गुणों की भी जो पर्याय मिल करके बनेगी वे अनंत भी द्रव्य की पर्यायें हैं। इसलिये गुणों को स्वाभाविक और वैभाविक दोनों स्वीकार किया गया है। अस्तित्व गुण भी वैभाविक होगा, सुनो! सामान्य गुणों में भी वैभाविक परिणमन होता है। अभी तक आप लोगों के विचार में, मनन में ये नहीं आया होगा कि अगुरुलघुगुण का वैभाविक परिणमन हो सकता है। कर्मोदयकृत अगुरुलघुगुण को भी राजवार्तिक में स्वीकार किया है।

वह जो अगुरुलघुगुण स्वाभाविक है उसके कारण शुद्ध अर्थ पर्याय निकलती है, वह केवल सिद्धों में होता है। उसके अलावा आचार्य महाराज ने कहा है कर्मोदय कृत अगुरुलघुगुण के कारण से आत्मा में कषायों की हानि, वृद्धि षड्गुणी ह्रास, वृद्धि रूप से परिणमन होता है। उसके माध्यम से शुक्ल लेश्या आदि हानि वृद्धि रूप से परिणमन होता है। सब कर्मोदयकृत अगुरुलघुगुण के माध्यम से हो रहा है। अशुद्ध आत्मा में अशुद्ध अवस्था में शुद्ध द्रव्य की वह शुद्ध पर्याय नहीं निकलती है। शुद्ध अगुरुलघुगुण का कार्य यहां पर नहीं है, ऐसा उस वार्तिक से ध्वनित होता है। कर्मोदय कृत अगर अगुरुलघुगुण है तो हम फिर ये कहने की हिम्मत कर सकते है कि कर्मोदय कृत ये अस्तित्व, वस्तुत्व गुण भी होंगे क्योंकि कर्म के कारण हमारा अस्तित्व यहां पर अशुद्ध है। अशुद्ध रूप में हमारा अस्तित्व है। कर्मोदय के कारण से हमारी जो द्रव्य-त्व गुण के माध्यम से परिणमन होगा तो वह हमारा अशुद्ध पर्याय के रूप में ही परिणमन होगा अगर ऐसा नहीं मानेंगे तो अशुद्ध द्रव्य से भी शुद्ध पर्याय निकलेगी फिर गलत बात हो जायेगी क्योंकि द्रव्य में जैसा गुण होगा वैसा ही उसका विकार, वैसा ही उसका परिणमन होगा। वही परिणमन उसके लिये पर्याय कहलाता है।

आकाश द्रव्य में भी अगुरुलघुगुण है या नहीं? शुद्ध द्रव्य है। शुद्ध द्रव्य में तो शुद्ध पर्याय के रूप में उसका परिणमन होगा।

विकार का मतलब क्या?

समझ लिया आपने? विकार का मतलब विकार नहीं, विकृति नहीं हैं।

विकार का मतलब विभाव परिणमन होगा? आप विकार का अर्थ गलत समझ रहे हैं। अगुरुलघुगुणविकारा: विकार का मतलब विशेष कार्य। अगुरुलघुगुण का जो कार्य है वो कार्य हमें जिस पर्याय के रूप में सामने आ रहा है उसका नाम विकार है। विकार का मतलब विकृति नहीं है, अगर विकार का मतलब विकृति हो जायेगी तो आचार्यों ने जो परिभाषा बनाई **'गुणविकाराः पर्यायाः'** तो सब गुणों की विकृति का नाम ही पर्याय हो जायेगा फिर स्वाभाविक गुणों का नाम पर्याय नहीं होगा। परिणमन को विकार कहते है। वि-विशेष जो उनका कार-कार्य है गुणों का, परिण-मन है उसका नाम पर्याय है। अगुरुलघुगुण विकारा स्वभावपर्याय: ऐसा ही लिखा है आलापपद्धति में। अगुरुलघुगुण का विशेष कार्य ही उसकी स्वभाव अर्थ पर्याय है। जिसे शुद्ध पर्याय कहा जाता है। इसलिये सामान्य गुणों में वैभाविक परिणमन होता है, कि नहीं इस विषय में सभी सामान्य गुणों को लेकर स्पष्ट प्रमाण नहीं लेकिन अगुरुलघुगुण के विषय में हमें आगमिक प्रमाण मिलता है। 'कर्मोदयकृत' उन्होंने स्वीकार किया है, नाम कर्मोदय वाला अगुरुलघुगुण नहीं है, वो अलग है।

इस स्वाभाविक अगुरुलघुगुण को उन्होंने स्वीकार किया है। 'कर्मोदयकृत' जिसके कारण से षड्गुण हानि वृद्धि रूप से कषाय का और लेश्या स्थानों का परिणमन है। अगर इस अगुरुलघुगुण में कर्मोदय का प्रभाव पड़ सकता है तो अन्य सभी गुणों में भी कर्म का प्रभाव होना चाहिये। हमारा अस्तित्व अभी अशुद्ध रूप में है तो अस्तित्व गुण के ऊपर भी इस कर्म का प्रभाव है ऐसा फलित होता है। यही हमारे **मनन** में आता है आप अपने मनन से बताओ क्या हो रहा है?

अगुरुलघुगुण जो कर्मोदयकृत है वो किन किन द्रव्यों में पाया जाता है? अशुद्ध द्रव्य में जो जीवद्रव्य अशुद्ध द्रव्य होगा उसी में वो अगुरुलघुगुण कर्मोदय कृत होगा। पुद्गल में कर्म का उदय नहीं होता है सामान्य गुण ये 6 द्रव्यों में पाये जाते है। इनका कथन ये है। द्रव्यों में संक्लेश के कारण वैभाविक शक्ति उत्पन्न होती है और वैभाविक जिनका परिणमन हो रहा है उन गुणों का जो परिणमन होगा, वो कर्म के प्रभाव से सहित होगा, वह भले ही सामान्य गुण हों वो जो सामान्य गुण हैं, सभी शुद्ध द्रव्य में शुद्ध रूप

में परिणमन करेंगे, सबकी शुद्ध अर्थ पर्यायें हैं, सबकी शुद्ध व्यंजन पर्याय हैं कोई दिक्कत नहीं लेकिन आपके इस जीव द्रव्य में जो संसारी अवस्था में है इसके अंदर अशुद्ध पर्यायें हैं। विशेष पर्यायें तो अशुद्ध हैं ही स्वभाव पर्यायों में भी कर्म का प्रभाव है। आप और मनन करें, चिंतन करें, जीवद्रव्य में कदाचिद् अशुद्धता पाई जाती है इसलिये अगुरुलघुगुण का अशुद्ध परिणमन आपको परिलक्षित होता है। पुद्गल द्रव्य में भी अशुद्धता पाई जाती है उसमें अगुरुलघुगुण का विभावात्मक परिणमन पाया जायेगा, अशुद्धता आयेगी उसमें तो अपने-अपने परमाणुगत जो षड्गुणी हानिवृद्धि हो रही है वो षड्गुणी हानिवृद्धि अपने-अपने परमाणुगत होती रहेगी।

वहां अशुद्धि कर्मोदय कृत नहीं है। सुनो! पुद्गल स्कंध रूप वैभाविक हो गया। कोई भी स्कंध है वह अनेक परमाणुओं

का समूह है। प्रत्येक परमाणु अपना एक अलग द्रव्य है। प्रत्येक परमाणु में अपने अलग गुण। वो सब गुण वहां पर एक साथ परिणमन कर रहे हैं, अब उस गुण के परिणमन में जैसी वह परिणती हो रही घट के रूप हो रही, पट के रूप में हो रही है या और किसी रूप हो रहा है वह परिणति के अनुसार सब स्कंधों की परिणति एक जैसी चलेगी।

शंका समाधान (देशना लब्धि)

शंका- जो शुद्ध अशुद्ध पर्यायों का समूह द्रव्य है ये कथन जो आता है वह कैसे धारित करेंगे ?

समाधान- जो पर्याये अशुद्ध रुप में निकल चुकी हैं उन सबका भी समूह बना लो और जो पर्याये आगे उस शुद्ध द्रव्य में निकलेगी उनका भी समूह बना लो और सब समूह का मिलाने का नाम द्रव्य है क्योंकि द्रव्य की कोई पर्याय कभी भी अलग से नहीं निकलती। पर्याय से अलग द्रव्य नहीं, द्रव्य से अलग पर्याय नहीं। त्रिकालवर्ती पर्यायों के समूह को द्रव्य कहा है। अब त्रिकालवर्ती पर्याय में अशुद्ध भी परिणमन है जीव का और शुद्ध भी परिणमन है। एक साथ द्रव्य की शुद्ध और अशुद्ध पर्याय नहीं होती। एक बार में तो जीव की एक ही पर्याय होगी आप उसको अशुद्ध मानो या शुद्ध मानो।

शंका- आकाश द्रव्य में भी अगुरुलघु गुण है या नही ?

समाधान- शुद्ध द्रव्य है, शुद्ध द्रव्य मे तो शुद्ध पर्याय के रूप में इसका परिणमन होगा । विकार का मतलब क्या समझ लिया आपने? विकार का मतलब ये विकार नहीं, विकृति नहीं है ।

शंका- विकार का मतलब विभाव परिणमन होगा ?

समाधान- आप विकार का अर्थ गलत समझ रहे है **अगुरुलघुगुण विकाराः** ,विकार का मतलब विशेष कार्य। अगुरूलघुगुण का जो कार्य है वह कार्य हमें जिस पर्याय के रूप में सामने आ रहा है उसका नाम विकार है। विकार का मतलब विकृति नहीं है।अगर विकार का मतलब विकृति हो जायेगी तो आचार्यो ने परिभाषा बनाई **गुण विकारः पर्यायः** - वह सब गुणों की विकृति का नाम ही पर्याय हो जायेगा, फिर स्वाभाविक गुणों का नाम, पर्याय नहीं होगा। परिणमन को विकार कहते है विशेष जो उनका कार्य है, गुणों का जो परिणमन है उसका नाम पर्याय है। **अगुरूलघुगुण-विकाराः स्वभाव पर्यायः,** ऐसा ही लिखा है आलाप पद्धति में। अगुरूल-घुगुण का विशेष कार्य ही उसका स्वभाव अर्थ पर्याय है जिसे शुद्ध पर्याय कहा जाता है- इसलिये सामान्य गुणों में वैभाविक परिणमन होता है कि नहीं, हम इस विषय में सभी सामान्य गुणों को लेकर स्पष्ट प्रमाण नहीं है यह स्पष्ट कह रहा हूं। लेकिन अगुरुलघुगुण के विषय में हमें आगमिक प्रमाण मिलता है- **कर्मोदयकृत** उन्होंने स्वीकार किया है, नाम कर्मोदय वाला अगुरूलघुगुण नहीं है वह अलग है।

इस स्वाभाविक अगुरुलघुगुण को उन्होंने स्वीकार किया है। कर्मोदयकृत जिसके कारण से षट्-गुण हानि वृद्धि रूप यह कषाय का और लेश्या स्थानों का परिणमन है। अगर इस अगुरुलघु गुण में कर्मोदय का प्रभाव पड़ सकता है तो अन्य सभी गुणो में भी कर्म का प्रभाव होना चाहिये। हमारा अस्तित्व अभी अशुद्ध रूप में है। तो अस्तित्व गुण के ऊपर भी इस कर्म का प्रभाव है ऐसा हमें फलित होता है और हमारे मनन में आता है। आप अपने मनन से बताओ क्या हो रहा है ?

शंका– अगुरुलघुगुण जो कर्मोदयकृत है वो किन-किन द्रव्यों में पाया जाता है ?

समाधान– अशुद्ध द्रव्य में जो जीव द्रव्य होगा अशुद्ध द्रव्य, उसी में वह अगुरुलघुगुण कर्मोदयकृत होगा। इनका कथन यह है- अगुरुलघु कर्म के उदय से होने वाला किन द्रव्यों में पाया जायेगा। जो अशुद्ध द्रव्य है, द्रव्यो में संश्लेष के कारण वैभाविक शक्ति उत्पन्न होती है और वैभाविक जिनका परिणमन हो रहा है उन गुणों का जो परिणमन होगा वह कर्म के प्रभाव से सहित होगा। वह भले ही सामान्य गुण हो। वह जो सामान्य गुण सबमें परिणमन करने वाले शुद्ध रूप में परिणमन करेंगे। सबकी शुद्ध पर्याय है- ,सबकी शुद्ध रूप व्यंजन पर्याय है। कोई दिक्कत नहीं लेकिन आपके इस जीव द्रव्य में जो संसारी अवस्था में है इसके अंदर अशुद्ध पर्यायें हैं विशेष पर्यायें तो अशुद्ध हैं ही, स्वभाव पर्यायों में भी कर्म का प्रभाव है। आप और मनन करें, चिंतन करे सभी साथियों से मिलकर करें। तब हम आपके लिये और आगे बतायेंगे।

शंका– जीव द्रव्य में कदाचित् अशुद्धता पाई जाती है इसलिए अगुरुलघु-गुण का अशुद्ध परिणमन आपको परिलक्षित होता है। पुदगल द्रव्य में भी अशुद्धता पाई जाती है। उसमें अगुरुलघुगुण का किमात्मक, किस कर्म के उदय से परिणमन पाया जाएगा,अशुद्धता आयेगी।

समाधान– उसमें तो अपने-अपने परमाणुगत जो षड्गुणी हानि वृद्धि हो रही है वह षड्गुणी हानि वृद्धि अपने-अपने परमाणुगत होती रहेगी। वहाँ कर्मोदय कृत नहीं है।पुदगल में कर्म का उदय है या जीव में, पण्डित जी, अगुरुलघु-गुण वहाँ पर •••••• सुनो पुदगल स्कंध रूप वैभाविक हो गया। कोई स्कंध है वह अनेक परमाणुओं का समूह है। प्रत्येक परमाणु अपना एक अलग द्रव्य है। प्रत्येक परमाणु में अपने अलग गुण वह सब गुण वहाँ पर एक साथ परिणमन कर रहे हैं।अब हम गुण के परिणमन में जैसी वह परिणति हो रही पर के रूप में हो रही, पर के रूप में हो रही या और किसी रूप में हो रही है। वह परिणति के अनुसार सब स्कंधो की परिणति एक जैसी चलेगी। वहाँ पर वह अगुरुलघु गुण उन सब गुणों के साथ में अपना परिणमन करेगा और वह परिणमन जिस घट, पट इत्यादि के रूप में होगा, स्कन्ध के रूप

में वह उसी रूप में माना जायेगा। वह कर्मोदय- कृत नहीं है। कर्मोदयकृत केवल जीव द्रव्य में ही होता है।

प्रत्येक परमाणु में आप अगुरुलघु गुण मान रहे हो या नहीं । है ना, तो वह प्रत्येक परमाणु के साथ में अगुरुलघु गुण मिल करके, स्कन्ध रूप एक पर्याय को निकाल रहा है। तो उसको हम, उसको विभाव पर्याय कहेंगे ना, इसलिये उसको भी विभाव पर्याय कहा गया है। वह भी उसकी विभाव व्यंजन पर्याय है। अर्थ पर्याय में भी विभावपना माना गया है वह इसी रूप में माना जाता है। ठीक है न। इसके बारे में आप और विचार करो। इसलिये तो कहा है न, 6 द्रव्यों का, सामान्य गुणों की देशना करना है, देशना लब्धि में। अब ऐसे आपके अन्दर विशुद्धि बढ़ेगी नहीं। अगर सीधे सीधे हम 6 द्रव्य समझा देते तो आपकी विशुद्धि बढ़ती नहीं, इसलिये ज्ञानियों के लिये विशुद्धि बढ़ाने में बड़ा क्लेश होता है। हाँ! ज्ञानियों को विशुद्धि, जब वह इस तरह से श्रुत का आलम्बन करते हैं, तभी उनके अन्दर विशुद्धि के भाव उत्पन्न होते हैं। तभी वह श्रुत का परिणमन अच्छा होता है। एक और रह गया गुण, कौन सा रह गया? प्रदेशत्व गुण, एक और । क्या चीज, हाँ-हाँ विचारणीय है और उसकी टीका को भी देखा तो पहले तो उसमें लिखा, '**अगुरुलघु-गुणास्तु अगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरुप प्रतिष्ठतः निवन्धनस्य अविभा-गी-प्रतिच्छेदसहिताः अनन्ताः गुणाः**' **अमृतचन्द्र जी महाराज** जी की उस टीका में ये वार्तिक है, मतलब उन्होंने वहाँ पर एक वचन में लिया। '**अगुरुलघुत्वाभिधानास्य**' अगुरुलघु नाम का वह गुण '**अविभागीप्रति-च्छेदसहिताः अनन्ताः**', ऐसा लिख रहे हैं वह, मतलब अविभागी प्रति-च्छेदो के साथ में अनन्त हो गया। तो वहाँ से, उस वार्तिक से ये स्पष्ट होता है कि उसमें अनन्त अविभागी प्रतिच्छेदों की अपेक्षा से अनन्तपना कहा जा रहा है।..... हाँ-हाँ...केवल ज्ञान के लिये कह सकते हो। जब केवल ज्ञान को हम गुण के साथ-साथ उसकी पर्याय भी मान सकते हैं तो केवल ज्ञान के गुणों के लिये अविभागी प्रतिच्छेदों की अपेक्षा से अनन्त कहने में कोई बाधा नहीं है। अविभागी प्रतिच्छेद केवल ज्ञान में तो अनन्त हैं ही और सुनो, एक चीज और बता दूँ, देखो, 6 द्रव्य हैं, 6 द्रव्य में - द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव अपने को घटाना है, मान लो, द्रव्य की अपेक्षा से कौन सा द्रव्य सबसे अधिक है छः द्रव्य में, बताओ, क्या कहोगे,पुदगल द्रव्य । छः द्रव्य में द्रव्य

की अपेक्षा से पुद्गल द्रव्य सबसे अधिक हैं। क्षेत्र की अपेक्षा से- आकाश द्रव्य। यह भी एक ज्ञान की चीज है। काल की अपेक्षा से- सभी द्रव्यों का काल समान माना जायेगा। उसमें अधिकता और कमी नही आयेगी। ऐसे भी लगा सकते हैं, यह भी कथन आता है काल की अपेक्षा से कि काल द्रव्य में ही यदि हम काल घटित करें तो अतीत काल की अपेक्षा से अनागत काल बड़ा है। इस अपेक्षा से हम अनागत काल को बड़ा कह सकते है। ये एक बात हो गई। और भाव की अपेक्षा से कौन सा द्रव्य बड़ा है? भाव की अपेक्षा से - जीव द्रव्य। क्यों? क्योंकि जीव द्रव्य के ज्ञान गुण के जो अविभागी प्रतिच्छेद होते है ,जो अनंत शक्ति अंश होते है,वह सबसे अधिक होते हैं। उनसे अधिक किसी भी द्रव्य में नहीं पाये जाते। इसलिये भाव की अपेक्षा से वह अधिक हैं। इस अपेक्षा से अगर केवल ज्ञान आदि में अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद हैं तो उस केवल ज्ञान को भी हमने अनन्त शक्ति रूप में स्वीकार किया है। अब आपका कहना है-हम उसको अनन्तगुणा, ऐसे ही कहे क्या? तो देखो, ये सब चीजें जो आचार्यों की भाषा में, सब चीज कहना अच्छी लगती हैं। आचार्यों ने कहा है- 'अगुरुलहुगा अणंता' तो उन्हीं के मुँह से अच्छा लगता है। अपन कहते तो आप हमारे ऊपर टूट पड़ते या आप कहते तो दुनिया आप के ऊपर टूट पड़ती। ऐसे ही अगर आचार्य महाराज कह दें कि - 'केवलज्ञान गुणाः अनन्ता' तो वह भी समझ आयेगा, लेकिन अपन कहेंगे तो फिर आपको सम्भालना खुद पड़ेगा। इसलिये जो कहा गया है, उतने को ही अपन स्वीकार करें। केवल ज्ञान में भी अनन्त शक्ति है, इस अपेक्षा से, देखो, आचार्य कुन्द कुन्द महाराज तो क्या क्या कह जाते हैं, वह क्या कहते हैं- जो वायुकायिक और अग्निकायिक जीव हैं, वे भी त्रस कर दिये, उन्होंने ! देखो, बच्चों को भी मालूम है कि अग्निकायिक और वायु-कायिक स्थावर जीव होते हैं और इतने बड़े आचार्य कुन्दकुन्द देव महाराज कहते हैं कि त्रस जीव हैं वो। तो देखो, उन्हीं के मुँह से अच्छा लगता है। अपन कहेंगे तो अज्ञानी कहलायेंगे और वे कहेंगे तो ज्ञानी कहलायेंगे। ये भी एक बात है। इसलिये वह जो उन्होंने कहा है, अपन उसी को स्वीकार करें और उनके ही अभिप्राय को ध्यान में रखते हुए, अपन इस बात का चिन्तन, मनन करें। ये छः गुण हैं, उनमें से एक प्रदेशत्व गुण और है। प्रदेशत्व गुण का अर्थ जो किया जाता है, आलाप पद्धति में ' प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं' यानि कि जो

द्रव्य जितने क्षेत्र को घेरता है वो उसका प्रदेशत्व गुण कहलाता है। जबकि अन्यत्र प्रदेशत्व गुण की परिभाषा भी अलग प्रकार से की जाती है कि जो व्यंजन पर्याय को प्रदेशत्व गुण का विकार कहते हैं, ऐसा कहते हैं। व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं? प्रदेशत्व गुण का विकार व्यंजन पर्याय है। हमें यह परिभाषा कहीं लिखी हुई नहीं मिली। क्या कह रहे हैं? पंडितजी, थोड़ी यह परिभाषा कहीं आचार्य प्रणीत ग्रन्थों में ढूंढो। आप कोर्स बना रहे हो, इनसाइक्लोपीडिया में कहीं मिला नहीं। प्रदेशत्व गुण के विकार को व्यंजन पर्याय कहते हैं, यह परिभाषा आचार्य प्रणीत ग्रन्थों में नहीं मिलती है। जिसमें प्रदेश रहें वह प्रदेशवत्त्व। तो प्रदेशवत्त्व गुण के माध्यम से जो व्यंजन पर्याय निकलती है, वह कहाँ परिभाषा आती है यह आपको हमें बताना है। ये परिभाषा केवल विद्वानों के द्वारा बनाई गई है, हमें ऐसा प्रतीत होता है। प्रतीत हो रहा है, अभी ऐसा कह रहा हूँ। हमें कहीं भी यदि आलाप पद्धति में क्षेत्रत्व, इतना ही लिखकर उन्होंने छोड़ दिया। हमें इन परिभाषाओं को इसी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। जो प्रस्तुति हमें आचार्यों के माध्यम से मिली है, उसी रूप में। जिस प्रदेशत्व गुण के द्वारा, वह द्रव्य जितना क्षेत्र घेरता है, वह उसके प्रदेशत्व गुण का कार्य है ये हमें बताना चाहिए। जब हम पर्याय के आकार के रूप में बताने लग जाते है तो वह हमारे लिये एक ऐसी दुविधा पैदा कर देता है कि अब व्यंजन पर्याय को हमने उस प्रदेशत्व गुण का पर्याय बता दिया। ये जो है थोड़ा सा, परिभाषा में कोई विकृति नहीं है, लेकिन कभी-कभी क्या होता है, प्रदेशत्व गुण के विकार का नाम तो व्यंजन पर्याय हो गया और बाकी के सब गुणों के विकार का नाम, फिर अगुरुलघु गुण के विकार का नाम अर्थ पर्याय है, तो अन्य गुणों के विकार का नाम क्या होगा? फिर बहुत सारी विसंगतियां आ जाती है, इसलिये इन परिभाषाओं को भी थोड़ा सा मनन, चिन्तन में लिया जाये कि जो आचार्य प्रणीत परिभाषाएं हैं हम उन्हीं को केवल उतने ही रूप में रखें। बोलो, महावीर भगवान की जय ।

4. प्रायोग्य लब्धि

पंच लब्धियों का वर्णन पिछले दिनों से सुन रहे हैं। ये पाँच लब्धियां आत्मा के सम्यक्त्व गुण को प्राप्त कराने के लिये हमारे भीतर घटित होती हैं। इन पांच लब्धियों के साधन जब हमारे सामने रहते हैं तो उन साधनों में मुख्य जो साधन है वह देशना लब्धि के रूप में आपके पास कल पहुंचाया गया। वह देशना लब्धि तक ऐसी स्थिति बनती है कि उस साधक का या उस व्यक्ति का जो मुख्य पुरुषार्थ है, वह देशना लब्धि तक विशेष रहता है। क्षायोपशमिक लब्धि, विशुद्धि लब्धि और देशना लब्धि ये तीन लब्धि उन्हीं को प्राप्त होती हैं जिनके पास में एक सदाचरण की भूमिका रहती है। ये तीन लब्धियां हमें सदाचरण की ओर ले जाती है जिसके बिना प्रायोग्य लब्धि और करण लब्धि होना संभव नहीं। उन लब्धियों में बीचों-बीच जो देशना लब्धि है ये सबसे प्रमुख इसलिये है कि उस देशना को प्राप्त करने के पहले अपने अंदर एक पात्रता हो और वह पात्रता क्षयोपशम और विशुद्धि के माध्यम से आती है। आचार्य अमृतचंद्रजी महाराज जी ने भी देशना को प्राप्त करने के लिये पात्रता का वर्णन किया है। 'जिनधर्म देशनाया भवन्ति पात्राणि' कौन होते हैं पात्र तो 'अष्टौ अनिष्टदुस्तर' ऐसे जो आठ मूलगुणों को धारण कर लिये हो, जो हमारे लिये अनिष्ट कारक हैं उनका त्याग कर दिया हो वह जिनधर्म देशना को सुनने का पात्र होता है। आचार्य कहते हैं उस पात्र के लिये जब देशनालब्धि की प्राप्ति होती तब वह आगे अपनी योग्यता को और बढ़ाता है। ये लब्धियाँ जब हमारे सामने सम्यक्त्व के आयतन हों, सम्यक्त्व के साधन हों तभी घटित होती हैं। क्षयोपशम लब्धि में भी, विशुद्धि लब्धि में भी ये साधन हमारे सामने रहते हैं। इन साधनों के अनुरूप जब हमारी विशुद्धि लब्धि में भी ये साधन हमारे सामने रहते हैं। इन साधनों के अनुरूप जब हमारी विशुद्धि बढ़ती चली जाती है तो हम इस प्रायोग्य लब्धि तक पहुंचते है जो एक योग्यता का बखान करने वाली है। करण लब्धि के पहले एक योग्यता की जरूरत है और उस योग्यता के लिये यहाँ पर नाम दिया गया है प्रायोग्य। उस योग्यता लब्धि को प्राप्त करने के बाद भी करण लब्धि हो जाये आवश्यक नहीं है लेकिन करण लब्धि से पहले इतनी योग्यता अवश्य हो जो प्रायोग्य लब्धि में बताई जा रही है। वह योग्यता यह

है जो आचार्य कहते हैं-

अंतोकोडाकोडी विद्ठाणे द्ठिदिरसाण जं करणं।
पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥7॥ ल.सा.

अर्थ- जब सात कर्मों की अंत: कोटाकोटी मात्र स्थिति अवशेष रहे तथा घातिकर्म का लता, दारु रूप द्विस्थानीय, अघाति कर्म का निंब, कांजीर रूप द्विस्थानीय अनुभाग रहे वह परिनाम भव्य-अभव्यों में सामान्य प्रायोग्यलब्धिकरण के हैं।

अनुभाग शक्ति-

जब कर्मों की स्थिति अंताकोड़ाकोड़ी प्रमाण हो जाये और जो कर्मों की अनुभाग शक्ति है वह विठ्ठाणे यानि द्विस्थानीय हो जाये तब वह प्रायोग्य नाम ही लब्धि उपलब्ध होगी जो 'भव्वाभव्वेसु सामण्णा' जो भव्य और अभव्य दोनों में सामान्य रूप से पाई जाती है। देखो! कितना पुरुषार्थ हुआ जो कर्म चतुस्थानीय आत्मा में थे वे यहां पर आकर द्विस्थानीय अनुभाग रह जाता है। कर्म के अनुभाग को हमें थोड़ा समझना होगा क्योंकि 4 प्रकार के जो कर्मबंध होते है उनमें प्रकृति, प्रदेश और स्थिति इनका हमें रस अनुभव में नहीं आता। इनका हमें कार्य अनुभव में नहीं आता मात्र अनुभाग बंध का कार्य ही हमारे अनुभव में आता है। अनुभाग बंध ही हमें फल देता है। कटुक फल हो या मधुर फल हो ये मात्र अनुभाग बंध से ही हमें मिलता है। शक्ति को पहले समझना होगा वह अनुभाग कर्म में पड़ी है। जो कर्म का अनुभाग शक्ति के रूप में हमारे सामने हैं वह स्पर्धक कहलाता है। कर्म की शक्ति यानि स्पर्धक के समूह को शक्ति बोलते हैं और उस शक्ति का वेदन हमारी आत्मा करती है। **विपाकोनुभवः** यह अनुभव जो होता है हमें कर्म का, वह स्पर्धको का अनुभव हमें होता है। स्पर्धक क्या कहलाते हैं? जिन कर्म परमाणुओं को हम इकट्ठा कर लेते हैं उन्हें वर्ग बोलते हैं। जिनकी शक्ति अंश समान है, जिनके अविभागी प्रतिच्छेद समान है ऐसे उन कर्म परमाणुओं के समूह का नाम **वर्ग** है। वर्ग के समूह का नाम **वर्गणा** है और वर्गणाओं के समूह का नाम स्पर्धक है। उस स्पर्धक में 4 प्रकार की शक्तियां या 4 प्रकार के स्थान होते है जो हमें जानने योग्य हैं। एक लता, दारु, अस्थि और शैल

ये चार प्रकार के अनुभाग हैं। लता एक स्थानीय अनुभाग कहलाता है। दारू द्विस्थानीय अनुभाग कहलाता है। अस्थि त्रिस्थानीय अनुभाग कहलाता है और चतुस्थानीय अनुभाग शैल कहलाता है। लता से दारू में अनुभाग अधिक होता है। दारू का मतलब लकड़ी से है। दारू में अधिक कठोरता होती है। लता की अपेक्षा दारू में अधिक कठोरता होती है लकड़ी से भी अधिक कठोरता होती है। अस्थि में यानि हड्डी में और उससे भी अधिक कठोरता होती है। शैल यानि पत्थर। जो कोई भी कर्म हमारे अन्दर बंधते है उनमें घातिया कर्म में 4 तरह के अनुभाग पड़ते है अभी हम केवल घातिया कर्मों की बात कर रहे हैं।

उन घाति कर्मों की बात, जिनके माध्यम से हमारी आत्मा के गुणों का घात होता है। वह घातिया कर्म का अनुभाग 4 प्रकार का है। उन घातिया कर्मों में भी 2 प्रकार के कर्म प्रकृति के रूप से विभाजित हो जाते हैं, एक देशघाती प्रकृति के रूप में और एक सर्वघाति प्रकृति के रूप में सर्वघाति प्रकृति का जब तक उदय रहेगा, सर्वघाति प्रकृति का अनुभाग जब उदय में आयेगा तब तक आपके लिये उस गुण का किंचित् अंश भी प्रकट नहीं होगा। देशघाति प्रकृति का जब उदय होगा तो उसके उदय में किंचित् अंश प्रकट होता है। यह देशघाति और सर्वघाति 2 तरह से इन घातिया कर्म का विभाजन करना। अब उस देशघाति और सर्वघाति प्रकृति में भी यह जानना कि सर्वघाति प्रकृति के जो स्पर्धक होते है वह सर्वघाति रूप में होते हैं लेकिन देशघाति में जो स्पर्धक होते हैं वे देशघाति भी होते हैं और सर्वघाति भी होते हैं, यानि देशघाति में दोनों तरह के स्पर्धक पाये जायेंगे लेकिन सर्वघाति में केवल सर्व का घात करने वाले सर्वघाति स्पर्धक ही होते है। जब हमारे सामने कर्म प्रकृति का विभाजन होता है, ४ घातिया कर्मों की ओर हम दृष्टिपात करते हैं तो हमारे सामने कुछ कर्म जो ज्ञानावरणी प्रकृति रूप है उस ज्ञानावर-णी के 5 भेद मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्यय ज्ञानावरण देशघाति प्रकृति है। इनमें देशघाति स्पर्धक भी है और सर्वघाति स्पर्धक भी है इनका अनुभाग एक स्थान से लेकर 4 स्थान तक चलेगा। लता समान भी इसमें अनुभाग होगा, दारू समान भी होगा, अस्थि और शैल समान भी होगा। केवलज्ञानावरण होगा तो दारू समान होगा, शैल समान होगा अस्थि समान होगा। एक इसमें विशेष बात जो सामने आती

है वह यह है कि अगर हम मिथ्यात्व, सम्यक-मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति का विभाजन इन स्थानों में करे तो सम्यक् प्रकृति के अनुभाग के स्पर्धक लता समान होंगे और दारू का जो स्पर्धक है उसका अनंतवा भाग कर दो, यह अनंतवा भाग वस उसका स्थान होगा इतनी ही सम्यक् प्रकृति का अनुभाग स्थान है। सम्यक्-मिथ्यात्व की अनुभाग शक्ति को देखना है तो अब वह जो दारू समान स्थान बचा है, अनंतवां भाग करने के बाद उसका भी अनंतवां भाग करो मात्र उतना ही अनंतवां भाग प्रमाण मात्र वह सम्यग्-मिथ्यात्व प्रकृति का अनंतवां भाग आ जाता है। उसके आगे फिर मिथ्यात्व का अनुभाग शुरू हो जाता है। यानि कि दारू का अनंत बहुभाग + अस्थि का पूरा अनुभाग + शैल का अनुभाग ये पूरा का पूरा मिथ्यात्व का अनुभाग आ जाता है। हम प्रत्येक प्रकृति में इन स्थानों को घटाने के बारे में विचार करें कि प्रत्येक प्रकृति कौन-कौन से स्थान को और कौन-कौन से भाव को धारण करने वाली होती है। देशघाति प्रकृतियां हैं- 4 ज्ञानावरण की, 3 दर्शनावरण की चक्षु अचक्षु और अवधि, 5 अंतराय कर्म की ये 12 और 9 नोकषाय और एक सम्यक्-प्रकृति ये 21 प्रकृतियां देशघाती प्रकृतियां हैं। इन देशघाती प्रकृतियों में दोनों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं। तो इनके अंदर चारों प्रकार का अनुभाग आ जायेगा केवल सम्यक् प्रकृति के लिये अलग छोड़के रखना। सम्यक् प्रकृति की विशेषता अलग से बनाई है। लता का पूरा स्थान एक स्थानीय और दारू का केवल अनंतवां भाग, इतना केवल सम्यक्प्रकृति का अनुभाग है, बाकी की जो 21 प्रकृतियां है उनमें 4 प्रकार की अनुभाग शक्तियां, अनुभाग स्थान मिलेंगे। जब चतुस्थानीय अनुभाग नहीं होगा उसमें तीन स्थान होंगे। जब त्रिस्थानीय अनुभाग भी कट जायेगा मात्र 2 स्थान रह जायेंगे और जब द्विस्थानीय अनुभाग भी कट जायेगा तब मात्र एक स्थानीय अनुभाग ही पाया जायेगा। आचार्यों का कहना है कि यह एक स्थानीय अनुभाग मात्र क्षपक श्रेणी में ही बनता है अन्यत्र कहीं पर भी यह अनुभाग आत्मा के लिये अनुभूति प्राप्त नहीं करा सकता, मात्र क्षपक श्रेणी में एक स्थानीय अनुभाग का उदय होता है।

उस अनुभाग में हमने जो देशघाती समझा इसी तरह सर्वघाती जो प्रकृति हैं उनके भी सर्वघाती स्पर्धकों के अनुभाग होते हैं। वह अनुभाग शैल समान होंगे, अस्थि सम्मान होंगे और दारू समान होगें। दारू में भी वह अनंतवा भाग

छोड़ देना जो सम्यक् प्रकृति के लिये छोड़ा है। सम्यक्-मिथ्यात्व प्रकृति के लिये और उसका अनंतवा भाग छोड़ देना और बाकी का जो बचा है वह पूरा का पूरा अनंत अनुभाग जो दूसरे स्थान वाला है, द्विस्थानीय, वह भी सर्व-घाती प्रकृतियों में बन है इस तरह से हम सामान्य से यह समझ सकते हैं कि केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है, केवलदर्शनावरण सर्वघाती है, इसके अलावा 5 निद्रायें सर्वघाती और मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व भी सर्वघाति प्रकृति हैं। इन सबको यदि हम अनुभाग के रूप में देखते है तो इनमें तीन स्थानीय अनुभाग ही आपको मिलेंगे या तो शैल समान या अस्थिसमान या दारू के बहुभाग समान, लता स्थानीय अनुभाग इनमें नहीं पड़ता है। केवल-ज्ञानावरण कर्म सर्वघाति कर्म है। आचार्यों का कहना है जब सर्वघाति कर्म का उदय है, सर्वघाति प्रकृति का उदय है तो उस प्रकृति के उदय में एक अंश भी उस गुण की प्राप्ति हमें नहीं हो सकती। क्या कहा? केवलज्ञानावरण कर्म का उदय है तो उसके माध्यम से केवलज्ञान पूरा का पूरा ढका हुआ है, पूरा का पूरा आवरित है या यूं कहो कि पूरा का पूरा नष्ट है। उस केवलज्ञान का एक अंश भी हमारे ज्ञान में नहीं आ सकता। यह सर्वघाति प्रकृति का कार्य है। यहां प्रायोग्यलब्धि में हम द्विस्थानीय कर्मों के पास आकर के खड़े हो गये। आप विचार करे कि हमने कितना पुरुषार्थ किया कि शैल समान अनुभाग को हमने काट दिया, वह अस्थि समाना अनुभाग को हमने तोड़ दिया और हम अब केवल दारू समान, लता समान उस अनुभाग को धारण किये हुये है यहां पर सभी घातिया कर्मों का अनुभाग द्विस्थानीय रह गया है मतलब केवलज्ञानावरण का अनुभाग भी द्विस्थानीय रह गया है। मतलब केवलज्ञानावरण का अनुभाग भी हमने द्विस्थानीय कर लिया। क्या कह रहे है! सभी घाति कर्मों के अनुभाग को हमने द्विस्थानीय किया है तो केव-लज्ञानावरण के अनुभाग को भी हमने द्विस्थानीय कर लिया और आचार्य कहते है जब तक उसमें सर्वघातिपना है तब तक उससे आपको कोई अंश भी प्रकट होने वाला नहीं है ये सर्वघाति प्रकृति की विशेषता है। कोई फर्क नहीं चतुस्थानीय अनुभाग था तब भी केवलज्ञान नहीं होगा, त्रिस्थानीय है तब भी केवलज्ञान नहीं होगा, द्विस्थानीय है तब भी नहीं होगा। जब तक केवलज्ञानावरण का एक अंश भी आत्मा के लिये अनुभूति में जायेगा तब तक उसके लिये कोई केवलज्ञान का अंश प्रकट होने वाला नहीं है। कोई

केवलज्ञान की किरण आपके अंदर उत्पन्न होने वाली नहीं। कर्म सिद्धांत पढ़ने के बाद, यह अनुभाग की व्याख्या सुनने के बाद हमारे अन्दर ये भावना और ये ज्ञान दृढ़ होना चाहिये कि केवलज्ञान की कोई किरण फूटती नहीं है। केवलज्ञान का कोई भी अंश आत्मा में प्रकट होता नहीं है और वह केवल-ज्ञान अन्य ज्ञानों के साथ रहता नहीं है। वह केवलज्ञानावरण का जब अभाव होगा तो आपके सामने मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मन:पर्ययज्ञानावरण इनका भी अभाव हो जायेगा। कुछ लोगों का ऐसा मानना है जिनेश भैयाजी कल कह रहे थे मतिज्ञान आदि चारों ज्ञान बने रहें और केवलज्ञान रूपी बड़ा बाबा भी बना रहे, बड़े बाबा के नीचे सब बाबा आ गये और उदाहरण भी उन्होंने दे दिया कि हाथी के पैर के नीचे सब समा जाते है लेकिन ये उदाहरण यहाँ पर फिट नहीं है। जहां केवलज्ञान है वहां कोई ज्ञान नहीं है क्योंकि केवलज्ञान वह क्षायिक ज्ञान के रूप में है ये जितने भी आपके ज्ञान है सब क्षायोपशमिक ज्ञान हैं। क्षायोपशमिक ज्ञान का क्षायिक के साथ सद्भाव नहीं पाया जाता। केवलज्ञान यदि रहेगा तो अकेला ही रहेगा। अब आप ये सोचो कि हमारे अंदर जो ज्ञान है वही बड़ा होते-होते केवलज्ञान का रूप धारण कर लिया है विचार तो ऐसा ही आता हैं क्योंकि जिनके अंदर ज्ञान की किरण फूटती है ऐसे फूटती है वह ज्ञाना आत्मा का स्वभाव है और वो ज्ञान हमारा स्वभाव है और उस ज्ञान की ही ये पांच परिणतियां है।

एक दिन जैसे ही सत्र शुरु हुआ और हमने कह दिया था कि आपका श्रु-तज्ञान केवलज्ञान के समान है वो भी आपने पकड़ लिया। जब श्रुतज्ञान केवलज्ञान के समान है तब वही श्रुतज्ञान केवलज्ञान के रूप में हमारे सामने आ जाता लेकिन आप मान के चलना कि उस केवलज्ञान का आपके इन मतिज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं है। न इस ज्ञान से उसकी उत्पत्ति होती है, न उसकी अनुभूति होती है। हमारे जितने भी मतिज्ञान हैं वे इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होते हैं ये असाक्षात् हैं, परोक्ष हैं लेकिन केवलज्ञान न इन्द्रिय और मन की सहायता का आलवंन लेता है और न उनमें कोई भी ज्ञेय परोक्ष होता है। वह सकल प्रत्यक्ष होता है। उस केवलज्ञान के परिणाम को प्राप्त करने के बाद मतिज्ञान आदि भेद उसमें रहते ही नहीं। एक उदाहरण और दे रहे थे जो हमने कल नया सा सुना था यहां जैसे मान लो एक भवन

और उस भवन में पिलर लगे हुये है ये हमारे लिये आवरण का काम करते है ये पिलर हटाते चले जाओ स्थान बढ़ता चला जायेगा और आवरण हटता चला जायेगा और जब सब आवरण हट गये तो हमारे लिये केवलज्ञान होता चला जायेगा, ऐसा भी उदाहरण उपयुक्त नहीं है ये भी एक दृष्टांताभास है इस प्रकार के उदाहरण के माध्यम से आप केवलज्ञान को कभी भी नहीं समझ सकते।

केवलज्ञान वह खजाना है जिसकी चाबी आज तक आपको मिली ही नहीं। केवलज्ञान वह तिजोरी के अंदर बंद हुआ ज्ञान है जिसकी किरण बाहर आज तक आपको पहुंची ही नहीं। क्या सुना! केवलज्ञान वह परिणति है जिसके बारे में आज तक आपको कोई अनुभूति हुई ही नहीं। उस केवल-ज्ञान का कोई भी अंश कोई भी भाव आज समझ नहीं सकते इन उदाहरणों के माध्यम वह केवलज्ञान जो अनंत ज्ञेयों को अपने अंदर समाये रखने की क्षमता रखता है वह अपने आप में बिल्कुल अलग अद्भुत और सब ज्ञानों से डिफरेंट ज्ञान है। उस ज्ञान का इन ज्ञानों से कोई सम्बन्ध नही है। वह ज्ञान गुण की पर्याय मानकर आप उस केवलज्ञान को अपना स्वभाव मानकर कि वह हमेशा से हमारी आत्मा में प्रवाहित है वह केवलज्ञान मात्र है। केवलज्ञान में और केवल-ज्ञान में अंतर है। आपका नम्बर भी इस बहकने वाले में न हो इसलिये बता रहा हूँ। इस ज्ञान की चर्चा में बहुत लोग बहके हुये हैं। श्री **जयधवल** आदि ग्रंथों में **आचार्य वीरसेन महाराज** जी ने इस केवलज्ञान की बहुत चर्चा की और उस चर्चा से भी कई लोग बहके हैं। केवल-ज्ञान जो सतत प्रवाहमान ज्ञान है वह केवलज्ञान है और हम जिस केवलज्ञान की बात कर रहे है वह क्षायिक ज्ञान के रूप में हमारे सामने आ रहा है। वह केवलज्ञान जब सकल ज्ञानावरणी कर्मों का क्षय हो जायेगा तब उत्पन्न होता है और जिस ज्ञान की धारा हमारे भीतर बह रही है, जिस ज्ञान को हम हमेशा ज्ञान गुण के साथ प्रवाहित करते हुये देखते हैं वह ज्ञान केवल ज्ञान मात्र का आलंबन लेते हैं तो वह ज्ञान कहलाता है। केवल ज्ञान(only knowledge) मात्र को उस केवलज्ञान के साथ जोड़कर ये मान लिया कि केवलज्ञान का अंश ही हमारे अंदर है। देखो! ये लिखा है श्री जयधवल जी पुस्तक में। आपको भी लिखा हुआ दिखा देंगे लेकिन यह भी एक बहुत बड़ा भ्रम है। **'सकलज्ञानावरण-कर्मप्रक्षयात् केवलज्ञानं उत्पद्यते'** जब

तक समस्त ज्ञानावरणों का क्षय नहीं होगा तब तक केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं होगी। इन अनुभागों के स्पर्धक को समझकर हम ये समझ लें ये दृढ़ धारणा बना लें कि कभी भी केवलज्ञान का कोई भी अंश कोई भी किरण हमारे अंदर नहीं हो सकती है। ये केवलज्ञान की किरण ये जो व्याख्यान है यह कुछ अलग लोगों के द्वारा प्रवाहित हुआ। हमारे अंदर ज्ञान गुण का प्रवाह सतत चल रहा है और वह ज्ञान गुण ही धीरे-धीरे विकसित होते-होते केवलज्ञान की तरफ पहुंच जाता है। आप उस ज्ञानधारा में ये कर्म की धारा देखें कितनी बलिष्ठ है? कितनी इनकी अनुभाग शक्ति है? इस कर्मधारा के अनुभाग को देखो! जो उस केवलज्ञान की धारा को पूरे के पूरे रोके हुये है, जो उस केवलज्ञान के अंश को किंचित् भी प्रकट नहीं होने देती है। भले ही हमारे लिये द्विस्थानीय अनुभाग आ गया हो लेकिन वह अनुभाग भी हमारे लिये केवलज्ञान की किरण प्रकट नहीं करा सकता। सुन लो! अभी ये द्विस्थानीय रस उत्पन्न हो रहा है और इस द्विस्थानीय रस में हमारे लिये योग्यता आ रही है कि जब तक चतुस्थानीय, त्रिस्थानीय अनुभाग को हम द्विस्थानीय नहीं बना सकते तब तक हमारे लिये करण परिणाम करने की योग्यता नहीं आयेगी। और वह करण परिणाम तभी प्राप्त होंगे जब प्रायोग्य लब्धि इस तरह की योग्यता बना दे। उस प्रायोग्य लब्धि में भी हमारे सामने ऐसे आयतन हों, ऐसे नोकर्म हों जिनके माध्यम से हमारी ये विशुद्धि बढ़ती रहे। सभी विशुद्धियां अच्छे आयतनों, सम्यक आयतनों के सद्भाव में ही बढ़ती है। अगर हमारे सामने सम्यक् आयतनों का अभाव हो गया, नोकर्म का अभाव हो गया तो हमारी प्रायोग्य लब्धि यहाँ पर टूट जायेगी। करण लब्धि तक नहीं पहुंच पाओगे, ऐसा भी अनंतबार हुआ है कि जीव इस प्रायोग्य लब्धि को भी प्राप्त करके करण लब्धि को प्राप्त नहीं कर पाता है। क्यों? क्योंकि विशुद्धि की कमी रहती है। विशुद्धि की कमी क्यों रह गयी? इस प्रकार के अनुभाग को प्राप्त करके क्या होता है? हमारे अन्दर एक पुण्य का भाव उत्पन्न होता है। हमारे अंदर ऐसे पुण्य कर्म का आस्रव होने लगता है कि पुण्य कर्म के माध्यम से, इस विशुद्धि के माध्यम से हमारे अंदर पुण्य कर्म का अनुभाग बढ़ने लगता है। फिर हम उस पुण्य को पाकर के बहक जाते हैं। क्षयोपशक लब्धि से लेकर के किसी भी लब्धि के बीच में हम बहक सकते हैं, और अगर इस प्रायोग्य लब्धि में बहक गये तो फिर करण

लब्धि तक हम नहीं पहुंच सकते। और यहां बहकना क्यों होता? तो आचार्य कहते हैं कि नोकर्म के सद्भाव के कारण से इस लब्धि को प्राप्त करके भी हम आगे नहीं पहुंच पाते। आपने इतना पुरुषार्थ कर लिया और अब आगे के पुरुषार्थ के लिये आपका मन नहीं बना, क्यों नहीं बना? क्योंकि आपके लिये मीठा-मीठा रस यहीं पर मिल गया। द्विस्थानीय अनुभाग आ गया, अब आपके लिये साता का ही अनुभव हो गया। आपके लिये साता की सामग्री मिलेगी। आपके लिये इन्द्रिय के अनुकूल भोग उपभोग प्राप्त होंगे और उन लाभों को प्राप्त करके आप बहक गये तो ये करण लब्धि तक पहुंचने की आपकी योग्यता गई। **भव्वाभव्वेसु सामण्णा** अर्थात् भव्य और अभव्य इस योग्यता को प्राप्त कर लेता है। **नोकर्म** का हमारा जीवन पर इतना प्रभाव पड़ता है कि आचार्य महाराज एक उदाहरण देकर बताते हैं जैसे कि आपको प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन हो गया। अब उस प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन के समय पर आपके लिये मिथ्यात्व का भी उदय हो सकता है। दूसरे गुणस्थान के लिये अनंतानुबंधी कषाय का भी उदय हो सकता है, सम्यक्-मिथ्यात्व का भी उदय हो सकता है, सम्यक् प्रकृति का भी उदय हो सकता है। कौन सा सम्यक्त्व है? प्रथमोपशम। अन्तर्मुहूर्त के बाद 4 में से कोई भी पुनः आपके लिये प्राप्त हो सकते हैं।

आचार्य महाराज का कहना है कि ये गुणस्थान हमारे लिये कैसे प्राप्त होंगे? बाहर नोकर्म का सद्भाव मिलने से हमारे अंदर उस कर्म प्रकृति का उदय आ जाता है। अगर आपके सामने भी समयसार जी का ग्रंथ है, लब्धिसार है तो आचार्य महाराज कहते हैं कि आपके सम्यक्त्व प्रकृति का उदय है, आपका चौथा गुणस्थान हो जायेगा। अगर आपके सामने मिथ्या ग्रंथ हैं तो आपके लिये मिथ्यात्व का उदय आ सकता है। आपके लिये अनंतानुबंधी का भी उदय हो सकता है। और मिश्र प्रकृति का भी उदय हो सकता है ये सब नोकर्म पर depend करता है। **नोकर्म का इन कर्मों के उदय उपशम में बहुत बड़ा योगदान है।** जब हम नोकर्म की व्याख्यायें पढ़ते हैं तो श्रुतज्ञानावरण का नोकर्म क्या? जो हमारे श्रुतज्ञान के ऊपर आवरण डालता है। उस श्रुतज्ञान की आराधना के लिये उस श्रुतज्ञान को प्राप्त करने के बावजूद भी श्रुतज्ञानावरण कर्म के लिये भी आपका बंध होता है। अधिक नोकर्म के माध्यम से और अधिक नोकर्म का बंध होगा तो क्यों होगा? तो

आचार्य कहते हैं कि अगर हमारे सामने मिथ्या कथानक, उपान्यास इस तरह की पढ़ने लिखने की सामग्री जिनका इस श्रुत से कोई संबंध नहीं, वह यदि सामग्री आपके आस-पास रहेगी, आपके लिये श्रुतज्ञानावरण के लिये नोकर्म है। आपके लिये श्रुत ज्ञानावरण कर्म का बंध होगा। ये श्रुतज्ञानावरण का बंध कराने के लिये नोकर्म है। अगर ये नोकर्म हमारे सामने बने रहे तो श्रुत की आराधना में हमारा मन नहीं लगेगा। अगर आपको काल्पनिक उपन्यास पढ़ने में मन लगने लगा आपको कामिक्स पढ़ने में मन लगता है, टी.वी. सीरियल देखने में मन लगता है अनेक चैनलों पर अपने समय को गंवाने में मन लगता है तो इसका मतलब है आपको श्रुत की कोई रुचि नहीं है और श्रुत की आराधना में मन इसलिये नहीं लगता है क्योंकि ये नोकर्म हमारे लिये श्रुत की रुचि को कम कर देते हैं।

इसलिये ये श्रुतज्ञानावरण के लिये नोकर्म हैं। श्रुत की रुचि कब बनेगी? जब आप इसे ही धारण करें, इसे ही पढ़ें चाहे वो आपको समझ में आये या न आये लेकिन अपने सामने आलंबन होना तो श्रुतज्ञान का होना। अगर आप श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम बढ़ाना चाहते है तो सुनो बहुत अच्छी बात जो अनुभूति में आती है वही बता रहा हूँ सुनो! श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम बढ़ाने के लिये जो ये आचार्य प्रणीत गाथायें हैं इन गाथाओं को आप प्रतिदिन पढ़ें। इन गाथाओं का पाठ करने से श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम बढ़ेगा। जितना जितना क्षयोपशम बढ़ेगा आपके भावों की विशुद्धि बढ़ेगी। आपने सुना होगा पर्याय, पर्याय समास, अक्षर, अक्षर समास, पद, पद समास ये सब हमारे अंदर आवरण के रूप में हैं और इन आवरणों का क्षय होने पर हमारे अंदर श्रुत का भाव प्रकट होता है। अगर हमें ये श्रुतज्ञान के अक्षर समझ में आते हैं तो हमारे अंदर अक्षर श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है और अगर उपन्यास के अक्षर समझ आते हैं तो वह सम्यक् श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं है। जब हम आचार्य महाराज के पास पहुंचे हमें कोई न्याय ग्रंथ का अनुभव नहीं था लेकिन पता नहीं क्यों? भीतर से अपने आप **आचार्य समंतभद्र महाराज** का **आप्त मीमांसा ग्रंथ** है और उस आप्त मीमांसा में ज्यादा समझ नहीं आता था। भीतर से एक रुचि रहती थी कि पढ़ना और उसका प्रतिदिन पाठ करना और पाठ प्रतिदिन करते-करते वह ऐसा कंठस्थ याद हो गया कि उस पाठ के माध्यम से अपने

लिये ऐसी अनुभूति होने लगी कि इन ग्रंथों का पाठ करने से भी इस श्रुत में वृद्धि होती है। ये एक अनुभूति की बात है। यदि याद करने की क्षमता बढ़ाना चाहो श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम बढ़ाना चाहो तो दुनिया की कोई भी चीज जल्दी याद कर सकते हो। टी.वी. के सीरियल सब आपको याद बने रहेंगे लेकिन हम यहाँ पर मात्र 4 स्थानीय अनुभाग बता रहे हैं। लता, दारु, अस्थि, शैल ये 4 अनुभाग भी आपके दिमाग में नहीं रहेंगे। अगर श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम आपके पास नहीं है तो यह क्षयोपशम नहीं होने के कारण ये श्रुत की बातें हमारे अंदर नहीं ठहरती। और दूसरी बातें बहुत जल्दी चली आती है।

कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार आदि की गाथाओं को याद कर रहे हैं तो श्रुत का क्षयोपशम बढ़ा रहे हैं, जरूरी नहीं कि व्याख्यान होने से श्रुत ज्ञाना-वरण का क्षयोपशम हो, इन गाथाओं को याद करने का अपना क्षयोपशम अलग है और वो क्षयोपशम ही आपके लिये परभव में काम आने वाला है। वह क्षयोपशम यदि रुचि के अनुसार हो जाता है तो यही श्रुतज्ञान केवल-ज्ञान की उत्पत्ति का कारण बन जाता है। **विणयेण सुदमधीदं केवलणाणं उप्पाज्जेदि।** वट्टकेराचार्य ने मूलाचार में लिखा है कि विनय से जो श्रुत का अध्ययन किया जाता है, वह हमारे लिये केवलज्ञान को भी प्राप्त करा देता है। हमारे लिये सूत्र, गाथायें याद नहीं रहती बाकी हमें सब याद रहता है। वो श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम आपके लिये श्रुतज्ञान को बढ़ाने में कारण नहीं होगा। यही श्रुतज्ञान आपको श्रुतज्ञान की वृद्धि के लिये कारण है और हमें इसी श्रुतज्ञान की वृद्धि करना है। जैसे-जैसे सम्यक्दृष्टि जीव होता चला जाता है वह बाहरी परिसर को अपने आप छोड़ता चला जाता है। अपने आप उसकी अरुचि होती चली जाती है। वह अपनी आत्मा का श्रद्धान करता है या फिर बाहर निकलेगा तो ये सुश्रुत, ये जिनवाणी या देव, गुरु इनके आलंबन में जायेगा। अपने दुर्ध्यान को बचाने के लिये कोई और आलंबन नहीं लेगा तब उसका उपयोग शुभोपयोग रह पाता है। उस शुभो-पयोग के माध्यम से ही उसका जीवन चलता है और इसके अलावा कोई आलंबन लेते है तो हमारा उपयोग 'विसयकसाओ गाढ़ो' आचार्य कुंदकुंद कहते हैं, **प्रवचनसार** में कि अशुभ उपयोग के लक्षण क्या है? तो कहते है -

विसयकसाओ गाढो दुस्सुददुचित्तदुद्ठगोद्ठिजुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्ससो असुहो॥ प्र.सा. 2/66॥

अर्थात्- विषय, कषायों की गाढ़ता होना। इन्द्रिय के विषयों में लोलुपता होना और दुश्रुत में लगे रहना और दुश्चित्त माने जो चिंतन होगा वह दुश्चित्त होगा और उसी प्रकार की आपस में चर्चा करेंगे ये दुर्ध्यान हैं और यह अशु-भउपयोग पापबंध का कारण है। शुभोपयोग पुण्य बंध का कारण है और परंपरा से मोक्ष का भी कारण है।

विशुद्धि के माध्यम से प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता चला जाता है। अभी भी विशुद्धि के माध्यम से आप प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का खंडन नहीं कर सकते हैं। उस अनुभाग का नाश नहीं कर सकते। ये घातिया कर्म तो अप्रशस्त ही हैं लेकिन अघातिया कर्म में प्रशस्त भी हैं और अप्रशस्त भी। पाप भी हैं, पुण्य भी हैं। उनमें से इन प्रकृतियों का जो अनुभाग है वह हमारे लिये निरंतर बढ़ता चला जाता है और वह अनुभाग इतना बढ़ता हुआ चला जाता है कि 10वें गुणस्थान में वह तीव्र अनुभाग का बंध होता है। उस अनुभाग का फल हमारे लिये मिलता ही नहीं। वह अनुभाग बांधा जाता है उसके फल को कोई नहीं भोग पाता क्योंकि वह कर्म हमारे उदय में ही नहीं आ पाता हमारे सत्ता में ही पड़ा रहता है और उसका कोई भी खंडन नहीं कर सकता। सिद्ध भगवान बनने से पहले जो प्रकृति का क्षय हो जाता है अयोगी गुणस्थान में बस उसी के साथ पूरा का पूरा भाग निकल जाता है। उस पुण्य का क्षय कभी भी नहीं होता जिस पुण्य के क्षय के लिये आपको उपदेश दिया जाता है कि पाप का क्षय तो दुनिया कर लेती है पुण्य का क्षय करो तो जाने। कई लोग कहते हैं, पुण्य का क्षय करो। वह कभी नहीं हो सकता। आचार्यों ने कहा है कि पुण्य के क्षय के लिये पुरुषार्थ कभी नहीं करना। पुण्य हमारा स्वभाव नहीं है जैसे पाप हमारा स्वभाव नहीं है लेकिन पुण्य के क्षय के लिये कभी पुरुषार्थ नहीं होता। पुरुषार्थ होता है, पाप के क्षय के लिये। बताओ! इन घातिया कर्म की प्रकृतियों में जो अनुभाग पड़ रहा है, सब पाप अनुभाग है। आप किसका क्षय कर रहे हैं, पाप का क्षय कर रहे हैं। ये घातिया कर्म प्रकृतियाँ कैसी हैं? पाप प्रकृति हैं और इस पाप का क्षय करते-करते ही केवलज्ञान की प्राप्ति होने वाली है। केवलज्ञान

की प्राप्ति के लिये कौन सी पुण्य प्रकृति का क्षय किया? आप ये विचार करे? आपको कहीं लिखा मिल जायेगा- **पापपुण्ण णिव्वाणं** अर्थात् पाप और पुण्य दोनों के क्षय से निर्वाण होता है। लेकिन उसका अर्थ भी हमें समझना। पाप के क्षय से होती है केवलज्ञान की प्राप्ति और पुण्य का जब क्षय होता है तो हमें होती है सिद्धत्व की प्राप्ति। वह पुण्य के क्षय के लिये हमें कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता वह तो अपने आप छूट जाता है इसका नाम है पुण्य का क्षय। निर्वाण अवस्था में न तो पुण्य है, न पाप है सब प्रकार की प्रकृतियों का अभाव हो गया है। इसलिये आचार्यों को कहना पड़ा पाप और पुण्य दोनों के क्षय से निर्वाण की प्रप्ति होती है। इसी बात को आचार्य पूज्यपाद देव ने कहा-

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥ (स.त.84)

अव्रतों को छोड़कर व्रतों में परिनिष्ठित हो जाओ। उन व्रतों को, उस पुण्य को भी छोड़ोगे तुम कब? जब तुम आत्मा के परम पद की प्राप्ति कर लोगे, तब तुम्हारे लिये अपने आप पुण्य छूट जायेगा। उसके छोड़ने के लिये तुम्हें कभी कोई पुरुषार्थ नहीं करना। आज दुनियाँ में ऐसे बहुत लोग हैं जो पुण्य को छोड़ने के लिये पुरुषार्थ कर रहे हैं और ऐसा ही बोलते है पाप का क्षय तो सब कर लेते है उससे कोई धर्म नहीं। जब पाप और पुण्य दोनों के सम की बात सोचो और पाप और पुण्य तुम्हारी दृष्टि में दोनों बराबर हो जायें तो तुम्हारे लिये मोक्ष होगा, इसलिये पुण्य क्रिया से बच जाते हैं वो जो पाप क्रिया में लगे हुये हैं, आचार्य कहते हैं- इस पुण्य के अनुभाग की कमी कभी नहीं होती। सिद्धांत ग्रंथों में यहाँ तक लिखा हुआ है कि पुण्य प्रकृतियों के अनुभाग का घात केवली समुद्घात से भी नहीं होता। क्या कह रहा हूं, किसी समुदघात से भी पुण्य के अनुभाग का घात नहीं होता, योग निरोध के द्वारा भी पुण्य प्रकृतियों का घात नहीं होता और अयोगी केवली भी उस पुण्य का घात नहीं कर सकते। ये पुण्य का घात जब आगे के गुणस्थानों में नहीं है तो ये पुण्य का घात आपको चौथे गुणस्थान से क्यों होने लगा? आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं- **'पुण्णफला अरहंता'** पुण्य के फल से वह अरहंत पद की प्राप्ति हुई।

आचार्य अमृतचंद महाराज की यह वार्तिक है "अर्हन्त: खलु सकलसम्य-क् परिपक्व पुण्यकल्पपादपफला एव भवन्ति॥" (प्र.सा. 1/45) कि जो पुण्य के कल्पवृक्ष के जो फल हैं वे क्या? अरहंत पद। अगर तुमने वह पुण्य का बीज नहीं बोया जो इस कल्पवृक्ष की तरह आगे बढ़े और ये कल्पवृक्ष में फल लगना तब ये पुण्य की यात्रा पूर्ण होगी। तभी यह पुण्य का पूर्ण फल होगा। जहाँ बीज होता है वहाँ वृक्ष होता है। बीज से शाखा, तना और फूल लगने के बाद में फल की प्राप्ति होती है। वह फूल भी आपको तोड़ना नहीं है क्योंकि वह फूल के बाद में फल बन जाता है। उसी से अपने आप वह फूल छूट जाता है हमें छोड़ना नहीं पड़ता फूल के अंदर जो बीज रहता है वह फल के रूप में जब सामने आ जाता है तब अपने आप वह जो फूल है वह छूट जाता है। उसे पहले से कभी नहीं छोड़ा जाता यह उपमा भी **आत्मानुशासन** में **गुणभद्र महाराज** ने दी है। हमें उस पुण्य के फल को प्राप्त करना है जो हमें अरहंत पद तक पहुंचा दें। यह **आचार्य कुंदकुंद** की वाणी है कि पुण्य के फल से अरहंत की प्राप्ति हो रही है और हम उस पुण्य को पहले से विष्ठा की उपमा दे रहे हैं। उस पुण्य को हम क्षय करने के लिये उपाय बता रहे हैं कि ये कितना बड़ा गलत तरीका हमारे सामने आ रहा है। हमें केवल पाप का क्षय करना। केवलज्ञानावरण पाप कर्म है। उस पाप कर्म के क्षय से हमें पुण्य की प्राप्ति होगी। इसलिये आचार्य कहते है **आत्मानं पुनाति इति पुण्यम्** जो आत्मा को पवित्र करे वह पुण्य है। और वह पुण्य क्या है? तो बताओ घाति चतुष्क के अभाव से आपके लिये पुण्य की प्राप्ति हो गई। घाति चतुष्क पाप है तो अनंतचतुष्टय क्या हुआ पुण्य रूप है या और कुछ रूप, बताओ? आज तक कोई कहने का साहस नहीं करता कि अनंतचतुष्टय पुण्य है, कहा किसी ने, सुना किसी ने अनंतचतुष्टय ये पुण्य रूप हैं। इस पुण्य को स्वीकार करो क्योंकि आत्मा के अंदर पुण्य के माध्यम से ही पवित्रता आई है और **आचार्य समंतभद्र महाराज** इस पुण्य की स्तुति करते हैं। कीर्तिमान पुण्य के निकुंज! आपके अंदर वह गुण है जिसकी स्तुति हम करने जा रहे हैं। पुण्य गुणों का ही व्याख्यान किया जाता है और इसी की स्तुति की जाती है। पुण्य को कभी निंदा नहीं की जाती जो ये पंचमकाल में हो रही है। यह हुण्डावसर्पिणी काल का दोष है। पुण्य की निंदा करना। पुण्य की पूजा होती और उस पुण्य की पूजा ही आचार्यों ने की है वो पुण्य वास्तव में हमें

अरहंत पद की प्राप्ति करा दे। यह अरहंत फल हमें इसी माध्यम से मिलता है। हम अपने अंदर विशुद्धि को उत्पन्न करते चले जायें भले ही हमें उस पुण्य का फल मिले। पुण्य के फल की ओर नहीं देखना। पुण्य का फल हमें अपने आप ऐसा फलता चला जाये कि बाहरी विषय कषाय को उपलब्ध न कराये। जो पुण्य हैं उनसे तुम अपनी आत्मा के झाड़ को बचाओ। क्या समझ रहे हो? पुण्य का कल्पवृक्ष बनाना है और उस कल्पवृक्ष के आगे पीछे बहुत सारी घास भी लगी रहती है। कल्पवृक्ष बनाना है उन तनों में! उस छोटी-छोटी सी फसल में उलझ गये तो वह कल्पवृक्ष जो केवलज्ञान के रूप में फलने वाला है वो नहीं मिलेगा इसलिये आचार्य कहते है कि पुण्य के फल की इच्छा मत करो लेकिन यह नहीं कहा कि तुम पुण्य मत करो। यदि यह कह दें तो तुम्हारे लिये कभी शुभउपयोग शुद्धोपयोग हो ही नहीं सकता। शुभोपयोग तो पुण्य है लेकिन शुद्धोपयोग उससे भी और गाढ़ा पुण्य है, बच नहीं सकते। शुद्धोपयोग में हमने क्या कर लिया? लोग कहते हैं शुद्धोपयोग में जाकर पुण्य और पाप दोनों नष्ट हो जाते हैं। कुछ नहीं होता पुण्य कभी भी नष्ट नहीं होता। पुण्य तो और बढ़ता है। वह पुण्य की क्रिया छोड़ी जाती है। पुण्य की क्रिया छोड़कर आप शुद्धोपयोग में बैठ गये तो आप और पुण्य कर रहे हो क्या समझ रहे हो? जितना तुम अध्यात्मनिष्ठ होते चले जाओगे, जितनी ज्यादा तुम आत्मा के निकट होगे उतना ज्यादा तुम्हारे लिये पुण्य का बंध होगा क्योंकि तुम्हारे अंदर विशुद्धि बढ़ेगी और उस विशुद्धि से पुण्य का अनुभाग बढ़ता है। विशुद्धि के माध्यम से कभी भी उस अनुभाग में कमी नहीं आती। और बढ़ती चली जाती है यह पुण्य का अनुभाग कहाँ पर काटा और कहां पर उस पुण्य का क्षय हुआ? जरा आप विचार तो करो। जो लोग इस प्रकार से कहते हैं, उनसे पूछो कि कौन से पुण्य के अनुभाग क्षय होने से मोक्ष होता है? कौन सी कर्म प्रकृति के क्षय होने से हमें मोक्ष होता है। जो पुण्य प्रकृति हो पूछो उनसे। ये सभी पुण्य प्रकृतियां तब तक हमारा साथ रखती हैं जब तक 14वें गुणस्थान तक ये शरीर साथ रहता है। यह अघातिया कर्म संबंधी पुण्य हमसे छूट जाता है। सुनो! घातिया कर्मों के क्षय से हमारे अंदर अनंत चतुष्टय आया वो पुण्य, वो पवित्र होना तो बना ही रहेगा लेकिन छूटेगा कौन सा जो अघातिया कर्मों के उदय के कारण जो शरीर संबंधी और बाहरी सामग्री संबंधी जो पुण्य मिला है ये केवल हमसे

छूटेगा। अंत में हमारे साथ में पुण्य ही जायेगा। अनंत चतुष्टय महा पुण्य और उस महापुण्य को प्राप्त करने के लिये ही हम पुरुषार्थ कर रहे हैं। आप किसी भी तरह की भटकाव की बात में मत आओ। ये सिद्धांत ग्रंथ, कर्म ग्रंथों को यदि हम पढ़ेंगे तो आपके अंदर इस प्रकार सम्यक्ज्ञान दृढ़ होगा। अध्यात्म पढ़ने से पहले क्या पढ़ें? केवल आप अध्यात्म-अध्यात्म पढ़ेगे तो आचार्य कहते हैं अध्यात्म पढ़ना लेकिन कब पढ़ना ये भी बताया गया है। गणधर देव भी भगवान तीर्थंकर के सामने जब प्रश्न करते हैं तो द्रव्यानुयोग के प्रश्न सब प्रश्नों को करने के बाद करते हैं। **"सर्व प्रश्नानुयोगानंतरं द्रव्यानुयोगं पृच्छ-न्ति, इति परमात्मप्रकाशे लिखितं परमात्मप्रकाशस्यटीकायां लिखितं"** **परमात्म प्रकाश ग्रंथ** की उस टीका में लिखा है वो पढ़ना कि सभी प्रश्नों के करने के बाद में वह गणधर देव या भरत चक्रवर्ती जैसे लोग जब भगवान के चरणों में प्रश्न करते है कि सात तत्व का, आत्मा का, अन्तर आत्मा का स्वरूप भगवन् बताओ।

ये सब अनुयोगों के बाद होता है। ये सबसे पहले अनुयोग आ गया यही सबसे बड़ी हमारे लिये स्वाध्याय का व्युतक्रम हो गया। सबसे बड़ी स्वा-ध्याय की हानि हो गई। कर्म ग्रंथ पढ़े बिना हमें कभी भी ये ज्ञान नहीं हो सकता कि केवलज्ञान कैसे उत्पन्न होता है? इस अनुभाग की हानि करो जो अघातिया कर्मों में अप्रशस्त प्रकृतियों का है और घातिया कर्मों का जो पूरा का पूरा अनुभाग है वह अप्रशस्त हैं और हानि होते-होते जब इसका पूर्ण नाश हो जायेगा तब आपको केवलज्ञान की प्राप्ति होगी, ये विशुद्धि के माध्यम से होता है और यह प्रायोग्य लब्धि भी करणलब्धि के लिये कारण है। अभी करण लब्धि आने वाली है लेकिन उससे पहले ये विशुद्धि हमारे पास होना नितांत आवश्यक है। इस विशुद्धि को प्राप्त करके यदि भटक गये, कोई बाहरी नोकर्म में उलझ गये तो फिर हमारे अंदर वह सम्यक्दर्शन की परिणति आते-आते रह जायेगी, छूट जायेगी। इसलिये आचार्य कहते हैं अपने सामने अच्छे-अच्छे समीचीन नोकर्मों को रखो जिसके माध्यम से हमारी ये लब्धियां आगे बनती रहें, बढ़ती रहें और अगर हमें ये सम्यक् दर्शन प्राप्त नहीं है तो हो जाये और हो जाये उसके बाद में वह संभला रहे तो वह नोकर्म के माध्यम से ही सम्भलेगा। अगर नोकर्म बिगड़ गया तो समझिये हमारे अंदर का सम्यक्त्व भी बिगड़ गया। हमारी रुचि जिस तरफ

है, उसी तरफ सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का निर्णय हो जाता है। यदि हमारी रुचि मिथ्या क्रिया कलापों में, मिथ्या कहानी किस्सों में है तो हमारी रुचि बिगड़ी हुई है, ये जानना और हमारी रुचि में ये सम्यक् शास्त्र हैं तो हमारी रुचि में सम्यक् दर्शन बना हुआ है ये जानना। ये बहुत गहरी बाते हैं बिल्कुल इस तरह से सामने रखना है कि हमारी रुचि किस ओर जा रही है। ये हमे सोचना है क्योंकि उसी रुचि पर हमारा श्रद्धान depend करता है उसी से हमारे अंदर सम्यक् दर्शन बनता है-इसलिये अपनी रुचि को समीचीन आयतनों से जोड़कर रखो। जो 6 आयतन वीतराग देव शास्त्र गुरु के हैं और उनके संबंधी है उनसे जोड़ करके रखोगे तो आपकी ये सम्यक् दर्शन की बात बनी रहेगी और जहां पर ये आयतन छूटे आपकी रुचि बिगड़ी, वहीं से आपके मिथ्यात्व की ओर झुकाव होने में देर नहीं। आप का समय हो गया है बोलो महावीर भगवान की जय।

शंका समाधान (प्रायोग्य लब्धि)

शंका- अभी आपसे हमने सुना कि जीव में एक ज्ञान पाया जाता है जो केवलज्ञान होता है, मात्र ज्ञान होता है और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि उससे विभिन्न होते हैं। एक सामान्यज्ञान है जो जीव का गुण है, केवलज्ञान का उस सामान्यज्ञान से क्या सम्बन्ध है?

समाधान- केवलज्ञान का उस सामान्यज्ञान से इतना ही सम्बन्ध है कि वह ज्ञान, सामान्यज्ञान गुण है और उस गुण का स्वाभाविक परिणमन वह केवलज्ञान है। उस गुण की वैभाविक पर्याय मतिज्ञान, श्रुतज्ञान है, वह है, लेकिन केवलज्ञान में ये सब पर्याय, ये सब ज्ञान नहीं है। ये कहने का मतलब है।

सामान्यज्ञान में, केवलज्ञान की परिणति नहीं है और केवलज्ञान में ये मति-ज्ञान आदि नहीं हैं। ये कहने का मतलब है- ये दोनों बातें फिर कह रहा हूँ, फिर समझ लो। सामान्यज्ञान में परिणमन है, जो केवलज्ञान है उस परिणमन को हम अपने ज्ञान से क्यों जोड़ रहे हैं। ये तो निगोदिया जीव में भी वह ज्ञान, सामान्यज्ञान की धारा बह रही है। उसमें कौन सी बात है।

शंका– इस समान्यज्ञान की धारा और केवलज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं है क्या?

समाधान– पर्याय की अपेक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है। चलो, गुण तो आत्मा में बना रहेगा, गुण तो शाश्वत होते हैं।

शंका– दोनों को अलग-अलग करने का तात्पर्य क्या होता है?

समाधान– तात्पर्य यही तो है जो हमने बता दिया। ज्ञान गुण की उस पर्याय का, ज्ञान गुण की उस पर्याय से कोई सम्बन्ध नही है जो निगोदिया जीव में ज्ञान गुण की पर्याय है और केवलज्ञान की ज्ञान गुण की पर्याय है। उन पर्यायों का आपस में क्या सम्बन्ध?

शंका– पर्याय तो दो एक साथ नहीं रहती, लेकिन जो ज्ञान है वह विकसित क्रम में ही तो वहाँ पहुँचा है, कि नहीं?

समाधान– वह विकास आप अपने इस गुण का मत मानो कि हमारे मति-ज्ञान का ही विकास होकर ही केवलज्ञान हो गया। नहीं तो, फिर वह मतिज्ञान छोटा हो जायेगा, केवलज्ञान बड़ा हो जायेगा। यह ही भैय्या जी का कहना था, ऐसा नहीं होता। वह अलग खजाना है उसको अपन ने अभी देखा ही नहीं है। वह लॉकर में लॉक है बस, क्या? केवलज्ञान। जब वह खजाना खुलेगा तभी वह दिखाई देगा, वह निधियाँ तभी प्रकट होंगी।

उस ज्ञान का कोई भी अंश, कोई भी किरण हमारे लिये, यहाँ पर कोई भी सम्बन्ध रखने वाला नहीं है। सामान्यज्ञान की धारा तो सब जगह चल रही है। वो सामान्यज्ञान का गुण होने से कोई फर्क नहीं पड़ता, गुण की परिणति क्या है? उससे फर्क पड़ेगा न। वह परिणति केवलज्ञानावरण के क्षय से प्राप्त होगी। उस परिणति को आप यहाँ अभी सामान्यज्ञान धारा के साथ, केवल गुण के रूप में जोड़ सकते हैं, पर्याय के साथ तो नहीं जोड़ सकते।

शंका– उस सामान्यज्ञान की पांच धारायें हैं, पांच अंश हैं, उनमें चार अंश नहीं है, एक अंश है केवलज्ञान का। इतना कहने में अपन को क्या आपत्ति

है?

समाधान– कहाँ पर अंश है वह यहीं पर है अभी। यहाँ तो नहीं हैं न। वह अंश, अंशी का भाव भी तभी घटित होगा, जब अंशी की आपको प्राप्ति होगी और अंश आपके सामने होगा। जब तक केवलज्ञान रूपी पर्याय के साथ में परिणमन नहीं होगा तब तक वह आपके लिये केवलज्ञान का अंश भी घटित नहीं होगा। आप फिर वही गड़बड़ करने वाले हैं। अंश, अंशी के चक्कर में फिर वह ही अंश आ रहा है। सुन लो, वह केवलज्ञान का अंश यहाँ पर मत लाओ।

वह सामान्यज्ञान है और उस सामान्यज्ञान की परिणति मतिज्ञान आदि पर्यायों के रूप में आपके सामने हैं। ज्ञान गुण हमेशा से आत्मा में बना हुआ है, यह तो सभी जानते हैं। अब उस ज्ञान गुण की केवलज्ञान रूप पर्याय की प्राप्ति जब होगी, तब वह उस केवलज्ञान गुण की पर्याय के साथ में जो ज्ञान गुण होगा वह अपने आपमें अलग होगा। उस ज्ञान गुण की परिणति को आप केवलज्ञान के साथ में, अभी से मत जोड़ो। अभी आपके पास में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान रूप उसकी परिणति है और अभी आपके लिये केवल-ज्ञान रूपी परिणति का कोई अंश नहीं है। उस अंश को जब प्रकट होगा, तभी अंशी से जोड़ना। अभी से उस अंश को अंशी से मत जोड़ो।

शंका– केवलज्ञान को भी श्रुतज्ञान के समान कहा गया है?

समाधान– ये सब अपने को समझाने को है कि भैय्या, अपना श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान के समान है। केवलज्ञान के लिये कारणभूत है ताकि हम उस श्रुतज्ञान को बनाकर रखें। लेकिन हम ऐसा भ्रम न पाल लें कि जितना केवल हम जान रहे हैं वही केवलज्ञानी जान रहा है, ऐसा भ्रम मत पालना। यह कहने का मतलब है, केवलज्ञान अपने आप में बिल्कुल different (अलग) है, मतिज्ञान से बिल्कुल भिन्न है, श्रुतज्ञान से बिल्कुल भिन्न है। उस केवलज्ञान की परिणति का अपने अनुभव में आने वाला कोई भी अंश नहीं है। हमें जो कुछ भी अनुभव है वह अपने मति और श्रुतज्ञान से है और वह अपने उस मति, श्रुतज्ञान से केवलज्ञान का अनुभव करना चाहें तो वह नहीं हो सकता है। ये ध्यान रखो।

शंका– कौनसा पुण्य पूजनीय है क्या पुण्य में भी भेद हैं?

समाधान– देखो, जिस पुण्य के माध्यम से अरिहन्त पद की प्राप्ति हो वह पुण्य पूजनीय है। जिस शुभोपयोग के माध्यम से शुद्धोपयोग की प्राप्ति हो, वह शुभोपयोग पूज्य है और पुण्य में भी भेद इसलिये हो जाता है कि जब वह पुण्य हमारे निदानबंध के साथ में होगा तो वह पुण्य हमारे लिये संसार का कारण हो जायेगा। जब हमारा पुण्य निदानबंध आदि से रहित होगा तो वह हमारे लिये मोक्ष का कारण हो जायेगा।

लोगों ने उसी पुण्य की निन्दा की है जो पुण्य हमारे लिये विषय-आकांक्षा को देने वाला है, निदानबंध के साथ मिलता है, बाकी का मोक्ष मार्ग पर चलने के लिये तो पुण्य ही आवश्यक है और आपको एक बात और बता दूं- आचार्य विद्यानन्दी महाराज जी ने श्लोक वार्तिक में लिखा है- ' **कि परम पुण्य के अतिशय से ही मोक्ष मार्ग बनता है।**' उसके बिना आप संयम धारण कर भी लोगे तो संयम का पालन नहीं कर पाओगे। संयम का पालन करने के लिये भी पुण्य की आवश्यकता है। यह भी आप मानकर चलना। 'परम पुण्य अतिशय पुरुषार्थाभ्याम् मोक्षस्य अवाप्तिः' ये **आचार्य विद्यानन्दी महाराज** ने लिखा है।

दोनों चीजें होना- परम पुण्य होना और पुरुषार्थ होना तभी आपके लिये मोक्ष मार्ग बनेगा, अन्यथा नहीं बनता।

शंका– प्रायोग्य लब्धि में जो बन्ध की सीमा निर्धारित की है वो क्या मोहनीय के लिये है या सभी आठों कर्मों के लिये है?

समाधान– सभी आठों कर्मों के लिये। द्विस्थानीयअनुभाग सभी कर्मों का पड़ता है। अप्रशस्त में भी नीम, कांजीर, विष और हलाहल, ये हम आपको बताना भूल गये। इसमें भी ये विष और हलाहल के समान अनुभाग मिट जायेगा। मात्र नीम और कांजीर के समान ही रह जायेगा। यहाँ पर भी द्वि-स्थानीय ही रह जाता है....... चतुस्थानीय! हाँ, तो वहाँ अनुभाग खण्डित होगा ही नहीं। ये पाप के बता रहे हैं- नीम, कांजीर, विष, हलाहल, ये पाप का अनुभाग है न।

पुण्य प्रकृतियों का तो बढ़ेगा, इसलिये तो लिखा है विशुद्धि से भी प्रशस्त प्रकृति के अनुभाग का हम खण्डन नहीं कर सकते। इसलिये तो बताया, वह बढ़ेगा। वह घटेगा नहीं। पाप का अनुभाग घटेगा। घातिया कर्म सम्बन्धी सब पाप है, उनका और अघातिया में जो पाप है उनका घटेगा।

शंका- नयसिद्ध क्या कहलाते हैं? सिद्धभक्ति में आता है।

समाधान- ऐसा है ये पूर्व प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से, ये भक्तियों में इस प्रकार से लिखा गया है। माने, जिनके जीवन में नयों की प्रधानता से, नयों की रुचि के माध्यम से जिनका जीवन चला हो, नयों की प्रधानता के माध्यम से जिन्होंने अपने ज्ञान को सम्भाला हो और जिनके अन्दर नयों का विशेष ज्ञान रहता हो। वह नय सिद्ध जीव कहलायेंगे। ये उसका अर्थ है। ऐसा जरूरी नहीं कि ज्ञान का विस्तार सभी के अन्दर रहे।

अब सामान्य से कोई आदमी कुछ नहीं जानता है, मान लो, इतना ही जानता है कि बस- अपने को सब कुछ छोड़कर अपनी आत्मा का ध्यान करना है। उसे नहीं मालूम व्यवहार से करना कि निश्चय से करना। ये सब एक विस्तार के साथ में जो जानते हैं- द्रव्यार्थिक नय के भी विषय-भेद, पर्यायार्थिक नय में भी शुद्ध-अशुद्ध, उपचरित, सद्भूत आदि जो तमाम नय चक्र है, उसके ज्ञान का जिनके पास में भण्डार है और वह जो सिद्धी को प्राप्त करेंगे तो वह नय से सिद्ध कहलायेंगे।

यह उस मुख्यता की अपेक्षा से कहा जा रहा है।

शंका- अकृत्रिम जिनालयों की रचना कोई करता नहीं है फिर भी इतनी संगोपांग रचना होती है, कारण सहित बतलाने का कष्ट करें।

समाधान- जो अकृत्रिम रचना होती हैं वह ही सांगोपांग होती है। कृत्रिम तो बिगड़ जाती है। बिगाड़नी पड़ती है, इसमें क्या बात है। मतलब जो natural है, वही चीज अच्छी होती है और जो artificial (कृत्रिम) है, उसमें ज्यादा आनन्द नहीं आता।

शंका- क्या थोड़ा उनकी अवगाहना आदि में अन्तर पड़ता है? बाकी की

रचनाएं एक सी रहती हैं?

समाधान- अवगाहना में अन्तर है, जिनालयों की अवगाहना तीन प्रकार की बताई- जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। नन्दीश्वर के उत्कृष्ट अवगाहना वाले जिनालय हैं।

पंचमेरू में भी कुछ जिनालय मध्यम अवगाहना के हैं और कुछ जिनालय वहाँ पर उत्कृष्ट अवगाहना के हैं। उनकी अवगाहना का, मतलब, जैसे एक हजार योजन लम्बा, पांच सौ योजन चौड़ा, दो सौ पचास योजन ऊँचा, ये एक अवगाहना हो गई। पांच सौ योजन लम्बा, दो सौ पचास योजन चौड़ा, एक सौ पच्चीस योजन ऊँचा, ये दूसरी मध्यम अवगाहना है। इस तरीके से अवगाहना का विभाजन किया गया है, हरिवंश पुराग आदि में, शास्त्रों में दिया है। देखो, इतनी अवगाहना में पांच सौ धनुष की प्रतिमा रहने में कोई बाधा नहीं समझ में आती। पांच सौ धनुष की प्रतिमायें तो सर्वत्र हैं, ये माना है। अवगाहना जिनालयों की अलग-अलग है। ऐसा नहीं कह सकते, कहीं पर भी नहीं, लेकिन जो अकृत्रिम जिनालयों में, जिसको कि हम जैसे पंचमेरू, नन्दीश्वर द्वीप आदि के जो जिनालय हैं, उनमें पांच सौ धनुष की प्रतिमायें हैं। अकृत्रिम जिनालय ये ही हैं। छोटी प्रतिमाओं का अभी तक कहीं पर भी उल्लेख नहीं आया है। सब पांच सौ धनुष की अकृत्रिम जिनालयों में प्रतिमायें होती हैं।

जिनालयों की अवगाहना तीन प्रकार की जरूर बतायी लेकिन जिनबिम्बों की अवगाहना एक ही है। त्रिलोकसार ग्रन्थ में जितनी भी अकृत्रिम प्रति-मायें होती हैं, वह उसी प्रकार से सुन्दर हैं, उनके केश, नख, भौहें सब उसी प्रकार के हैं। हाँ! बताया है त्रिलोकसार ग्रन्थ में!

शंका- केवलज्ञान में त्रिकालपना कैसे बनता है। एक ही समय में सम्पूर्ण ज्ञेय केवलज्ञान में आ जाते हैं फिर त्रिकालपना कैसे घटित होता है?

समाधान- ज्ञेय सम्पूर्ण ज्ञान में जब भी आते हैं तो वह अपनी वर्तमान की साक्षात् परिणति जो उनकी है, उसी को लेकर आते हैं। अतीत और अनागत की जो पर्यायें हैं, वह उस ज्ञान में स्पष्ट झलकती हैं और स्पष्ट झलकने के

साथ में, उनका जो प्रत्यक्षपना है, वह प्रत्यक्षपना उस ज्ञेय के साथ सम्बन्ध रखता है जो वर्तमान में उसमें है।

आपके लिये जो त्रिकालपना समझ में आ रहा है ये त्रिकालपना, उस ज्ञान की विशदता के कारण से आ जाता है। जब सब ज्ञानावरण का पूरा अभाव हो गया। उस ज्ञान के अन्दर **'विशदम् प्रत्यक्षम्'** इतनी विशदता आ जाती है कि वह त्रिकालवर्ती पर्यायों को अपने सामने जान लेता है। परोक्ष पर्यायों को भी जानता है, प्रत्यक्ष को भी जानता है। हाँ! भूत को भूत के रूप में जानेगा, भविष्यकालीन को भविष्यकालीन के रूप में जानेगा। जो जिस रूप में है उसको उसी रूप में जानेगा। अन्यथा थोड़ी जानेगा। नहीं! तो जो लंका में आग भूत में लगी है तो उन्हें भूत वाली पर्याय में ही दिखाई देगा। वर्तमान की पर्याय में, वह लंका की वर्तमान परिणति दिखाई देगी। भविष्य में उस लंका की जो परिणति होने वाली है वह परिणति उन्हें दिखायी देगी।

जब वर्तमान पर्याय का द्रव्य आपके सामने नहीं होगा तो भूत और भावी पर्यायों को आप कैसे समझ लोगे। उसमें वर्तमान की जो परिणति है, वर्तमान के रूप में, भूत की जो परिणति है भूत के रूप में, अनागत की जो परिणति है अनागत के रूप में, इसी रूप में होगी। तभी वह भगवान के ज्ञान में तीनों परिणतियाँ जानने में आयेंगी। नहीं तो वह सब संकर हो जायेगा, mixture हो जायेगा।

शंका— आज वर्तमान में देखा जाता है कि जो जितना ज्यादा श्रुत का अध्ययन करता है, उसे श्रुत का ज्ञान तो देखा जाता है परन्तु चारित्र के प्रति उसकी रुचि कम देखी जाती है। ऐसा क्यों? उचित मार्गदर्शन दें।

समाधान- देखो, ये तो बताया ही गया है कि श्रुतज्ञान प्राप्त होने के बाद आपके लिये, चारित्र की भी प्राप्ति के लिये भी आपको उतना ही उत्साहित होना चाहिये, तभी वह श्रुत का फल माना जाता है। श्रुत का फल क्या कहा, चारित्र की प्राप्ति होना और उस चारित्र की प्राप्ति यदि आपने की है और आप उसको सम्भाल नहीं रहे हैं तो ये भी उस श्रुतज्ञान को आप हानि पहुँचा रहे हैं। यानि जितना अपने पास में अभी क्षयोपशम है उससे भी कम क्षयोपशम भविष्य में हो जायेगा, अगर हमने अपने उस श्रुतज्ञान को अपने

चारित्र के अनुसार नहीं सम्भाला तो। रुचि कम होती है बाहरी आडम्बरों को देखने से, बाहरी दुनिया में आप लोग ज्यादा भटकते हैं, घूमते हैं, आप कहीं पर भी फ्लाइट से जा सकते हैं, कहीं पर भी आ सकते हैं। इन्टरनेट, अनेक प्रकार के मोबाइल, सभी आपके पास में हैं। इन सबसे बाहरी दुनिया में रुचि बढ़ती है। उससे श्रुतज्ञान में कमी आती है, चारित्र में भी कमी आती है। ये इसी कारण से होता है।

शंका– पुण्य को हेय, फल की अपेक्षा कहा जाये तो क्या हानि? फल में फंसते हुए देखे जाते हैं।

समाधान– पुण्य को हेय फल की ही अपेक्षा से कहा गया है। जो फल हमें विषय-कषायों में उलझा दे, जिस पुण्य के माध्यम से हम विषय-कषायों में उलझ जायें, वह पुण्य हमारे लिये हेय है। बाकी के कोई भी पुण्य, जो मोक्षमार्ग सम्बन्धी पुण्य है, वह कभी भी हेय नहीं होता। यह तो निश्चित है।

शंका– पूजन में पीठिका में 'पुण्यं समग्र महमेकमना जुहोमि' कहा गया है?

समाधान– ये अब इसी अपेक्षा से समझ लो कि 'केवलज्ञान की अग्नि में.....' यह भी लिखा है। उसमें केवलज्ञान की अग्नि में सब होम कर रहे हो। अब बताओ, आप पूजा में ही सब होम करने लगे तो कैसे काम चलेगा। इसके भी लोग कई तरह से अर्थ लगाते हैं। अब जो लोग उसको सम्भालते हैं उन्हीं से पूछ लेना कि पूजा करने वाले जो लोग हैं, किस तरीके का उसमें अर्थ लगाते हैं।

शंका– सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी, पुण्य और पाप की एक जैसी क्यों कहीं गई?

समाधान– देखो, ये स्वभाव की अपेक्षा से, पुण्य भी एक कर्म है, पाप भी एक कर्म है। कर्म पुद्गल है। पुद्गल आत्मा का स्वभाव नहीं है। जो स्वभाव नहीं है वह हमारे लिये हेय है। वह हमारे लिये एक जैसा है। जब हम केव-लज्ञान की दृष्टि से देखते हैं तो हमारे लिये प्रत्येक, पुण्य कर्म और पाप कर्म एक जैसा हो जाता है। स्वभाव की अपेक्षा से ये एक है लेकिन फल की अपेक्षा से और हमारे कार्य की अपेक्षा से इसमें अन्तर आ जाता है। पुण्य के

फल में हमें सोना मिलता है और पाप के फल में हाथ में लोहे की हथकड़ी मिलती है। ये भी आप जानते हो इसलिये पुण्य और पाप दोनों एक जैसे नहीं हो सकते। सोना पहनकर भी आप खुश रह सकते हो और हथकड़ी आपके लिये डाली हुई होगी तो आप कभी भी खुश नहीं रह सकते।

शंका– जो शास्त्र की गद्दी पर बैठकर, शास्त्र का आधार न लेकर, इधर-उधर की बातें सुनाकर श्रावक को संतुष्ट करते हैं, क्या वे जिनवाणी की अविनय नहीं कर रहे? क्या उन्हें मिथ्यात्व का दोष नहीं लग जाता। इस पर कृपया प्रकाश डालें।

समाधान– अवश्य लगता है। अगर आपके लिये शास्त्र का प्रवचन करने के लिये कहा है तो आप नियम से शास्त्र के अनुरूप ही, जिनवाणी के अनुरूप ही सन्दर्भ देते हुए, आप अपनी बात को आगे बढ़ायें। प्रत्येक प्रवचन में आपके द्वारा श्रावक को कुछ न कुछ ऐसा उपदेश मिलना चाहिए, जिससे श्रावक पाप से मुक्त हो। उस श्रावक के अन्दर संवेग और वैराग्य भाव बढ़े और उस श्रावक का देव, शास्त्र, गुरु से जुड़ाव हो। इस प्रकार के आपके प्रवचनों के उद्देश्य होने चाहिये। तब आपका वह शास्त्रीय प्रवचन कहलायेगा। अगर ये उद्देश्य नहीं है तो वह शास्त्रीय प्रवचन नहीं माना जायेगा।

शंका– मुनिवर आपने कहा कि मोक्ष में पाप और पुण्य नहीं होते। फिर अनन्त चतुष्टय पुण्य रूप कैसे कहलायेगा, स्पष्ट करें?

समाधान– देखो, **'पुनाति आत्मानं इति पुण्यं'** जो अपनी आत्मा को पवित्र करे, वह पुण्य है। हमारी आत्मा की पवित्रता किससे आयी? अनन्त चतुष्टय से आयी। इसलिये ये अनन्त चतुष्टय हमारे लिये पुण्य है। पाप कर्म के क्षय से क्या होगा? पुण्य ही भाव होगा या और कोई दूसरा भाव होगा। पाप का नाश हुआ, पुण्य भाव की प्राप्ति हुई। वह पुण्य भाव हमारे लिये अनन्त चतुष्टय रूप में, परम मंगल रूप वह पुण्य है। 'आप मानो ना मानो, जो है सो है, कोई हम कमरे में तो कह नहीं रहे हैं, तुम्हें सुनाकर कह रहे हैं।'

शंका– द्विस्थानीय अनुभाग घाति-अघाति दोनों का होता है या घाति मात्र का?

समाधान– देखो, अभी हमारा ये व्याख्यान थोड़ा अधूरा रह गया। द्विस्था-नीय अनुभाग घाति में भी होता है और अघाति में भी होता है। अघाति में प्रशस्त में भी होता है और अप्रशस्त में भी होता है। चारों स्थानीय अनुभाग इन तीनों प्रकार की प्रकृतियों में बन्ध जाते हैं। ऐसा जानना।

शंका– पुण्य प्रकृति का सब जीवों को चतुस्थानीय बंध होता है या इसमें स्वामी की अपेक्षा भेद पाया जाता है?

समाधान– पुण्य प्रकृति का चतुस्थानीय बंध करने के लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। शुद्धोपयोग में व दसवें गुणस्थान में बैठकर पुण्य प्रकृति के चतुस्थानीय अनुभाग के बंध होते हैं। इससे पहले तो अपने को गुड़ और खांड से ही काम चलाना पड़ता है, अमृत का अनुभव तो बहुत बाद में होना है।

शंका– पुरूषवेद का भी एकस्थानीय बंध होता है क्या?

समाधान– हां, होता है। श्रेणी में होता है।

शंका– पुरूषवेद को छोड़कर शेष आठ कषायों का लता अनुभाग रूप एकस्थानीय अनुभाग का बंध भी होता है क्या?

समाधान– इनका भी होता है। जितने भी ये नो कषाय हैं, इनके भी एक-स्थानीय अनुभाग बंध हैं। केवल अघातिया कर्म की जो प्रकृतियां हैं, इनमें एक स्थानीय अनुभाग नहीं होता। इनके द्विस्थानीय अनुभाग हैं। नीम और कांजीर ही रहेगा, अकेला नीम रह जाये, ऐसा नहीं होता।

शंका– केवलज्ञानावरण में देशघाति स्पर्धक होते हैं या नहीं। यदि नहीं होते तो इसे देशघाति को छोड़कर त्रिस्थानीय मानना चाहिये, क्या?

समाधान– देशघाति तो होते ही नहीं, सर्वघाति स्पर्धक हैं केवलज्ञानावरण में। तीन प्रकार के स्थानीय अनुभाग उसमें मिलेंगे। अब उस स्थान अनुभाग में हम शैल और अस्थि की कमी करके द्विस्थानीय अनुभाग भी रख सकते हैं।.... हां.... चतुस्थानीय में तीन स्थानीय अनुभाग होंगे, दारु समान उसमें

अनुभाग, सर्वघाति है न उसमें। प्रकृति, देशघाति स्पर्धक उसमें है ही नहीं। लता समान स्थान केवल देशघाति स्पर्धकों में ही है।

शंका– प्रायोग्य लब्धि के उत्कृष्ट लब्धि स्थान को जिसने प्राप्त कर लिया। वह नियम से करण लब्धि में प्रवेश करेगा, अभव्य जीव इस स्थान को प्राप्त नहीं कर सकेगा, क्या?

समाधान– इसमें ऐसी कोई नियामकता नहीं है कि प्रायोग्यलब्धि के उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त करने के बाद करण लब्धि प्राप्त कर ले। ये तो अगर प्राप्त करना है तो होना है। इसकी नियामकता नहीं है कि प्रायोग्य लब्धि के साथ नियम से करण लब्धि फिर हो ही हो। अभव्य को वो उत्कृष्ट स्थान नहीं मिलते हो, भव्य को मिलते हों। ऐसा भी कोई व्याख्यान अपने को पढ़ने में नहीं मिला।

शंका– पुण्यकर्म का क्षय कब और कैसे होगा?

समाधान– बता तो दिया। सब अयोग केवली के अन्तिम द्विचरम समय में और चरम समय में सब पुण्य प्रकृतियों का अपने आप क्षय हो जायेगा। अपने आप पत्ते झड़ गये, मोक्ष हो गया, उसी का नाम पुण्य प्रकृति का क्षय है, इससे पहले कोई क्षय नहीं।

शंका– किस पुण्य के योग से अनन्त चतुष्टय प्राप्त होता है?

समाधान– ये सब पुण्य के ही तो योग हैं। जितने भी आपके लिये औदारिक शरीर, वज्रवृषभनाराच संहनन आदि और तीर्थंकर नामकर्म के पुण्य के विषय में और ज्यादा विशेष रूप से वहाँ पर कहा गया है, जो अरिहन्त पद प्राप्त होता है, जो अरिहन्त पद की प्राप्ति आपको शुभोपयोग वाले पुण्य से जानना है तो जो शुभोपयोग आपके लिये शुद्धोपयोग की रुचि बनाये, आत्मा की रुचि बनाये। वह सब पुण्य आपके लिये अरिहन्त पद के लिये कारण है।

5. करण लब्धि

पंच लब्धियों के प्रकरण में हमने विगत दिनों में क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशना लब्धि और प्रायोग्य लब्धि के बारे में सुना है। अब उसी क्रम में पांचवी लब्धि करण लब्धि आती है। करण के कई अर्थ :- करण शब्द के कई अर्थ होते है। करण माने परिणाम भी होता है। करण का अर्थ क्रिया भी होता है। करण का अर्थ गणित भी होता है। और एक करण साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। जिसे हम व्याकरण में **साधकतमः करणाः** ऐसा भी कहते है। इनमें से करण लब्धि का अर्थ ऐसे परिणामों की प्राप्ति करना है जिन परिणामों के माध्यम से आत्मा को सम्यक्त्व के विरोधी उन सभी कर्मों का उपशमन करना होता है और उस परिणाम की प्राप्ति के लिये आत्मा में जो अनेक प्रकार की क्रियायें घटित होती हैं उन क्रियाओं को भी करण के नाम से कहा जाता है। मुख्य रूप से आगम में 10 करण आते हैं। वह 10 करण कर्म की विशेष 10 क्रियायें है जिनके बारे में हमें थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होना आवश्यक है। सबसे पहला करण **बंध-करण** आता है। बंध का अर्थ होता है कर्म परमाणुओं का आत्मा के साथ में एकमेक हो जाना, इस तरह से एकमेक हो जाना इस तरह से एकमेक हो जाना कि आत्मा और कर्म इन दोनों के जो प्रदेश हैं उनका संश्लेष संबंध हो जाना। उस संश्लेष के माध्यम से हम ये पृथक्-पृथक् न कह सकें कि यह आत्मा का प्रदेश है कि कर्म का प्रदेश है। वह आत्मा और कर्म के प्रदेश एक दूसरे से मिलकर इस तरह से एकमेक हो जाते हैं कि वह एक दूसरे के स्वभाव को ग्रहण कर लेते हैं। आत्मा के स्वभाव को भी कर्म ग्रहण कर लेता है और कर्म के स्वभाव को आत्मा ग्रहण कर लेती है। यह एक बहुत बड़ी घटना है। हर एक आत्मा में घटित होती रहती है आत्मा में कर्म का बंध होने पर उस आत्मा के अंदर कर्मगत भाव उत्पन्न हो जाता है और जब कर्म आत्मा में बंधता है तो कर्म के अंदर भी ऐसा भाव उत्पन्न हो जाता है कि वह अचेतन होकर इस चेतना को बाधित करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। **'तस्सत्ती भावकम्मं तु'** उस कर्म को भाव कर्म कहा जाता जिसके माध्यम से उसमें ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह उस आत्मा के लिये उसी प्रकार का भाव उत्पन्न करेगा जो भाव उसने आत्मा से ही ग्रहण किया है। अनेक प्रकार के विकारी भावों को ग्रहण

करने की वह शक्ति कर्म के अंदर आत्मा के माध्यम से आती है। इसलिये उसे भाव कर्म और द्रव्यकर्म 2 रूपों में विभाजित किया है। द्रव्यकर्म तो उस पुद्गल वर्गणा का नाम है जो कर्म रूप में परिणत हो गया भाव बंध उसका नाम है जो भाव के साथ में उस आत्मा के साथ रहेगा। जब तक कि उस आत्मा से उसका विनाश नहीं होता है इस भाव की शक्ति को जब तक हम इस रूप में न स्वीकारे कि आत्मा में भी ऐसा भाव उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण से वह हमें राग करा देता है, क्रोध के रूप में ढला हुआ यह कर्म हमें क्रोध उत्पन्न करा देता है, मान के रूप में ढला हुआ वह कर्म हमें मान उत्पन्न करा देता है, इस तरह की भाव शक्ति जब उसके उत्पन्न हो जाती है तब वह कर्म भी हमारी आत्मा के लिये विकृति और विकार उत्पन्न कराने का कारण हो जाता है। कर्म सिद्धांत के बारे में और इस कर्म बंध के बारे में सभी लोग पढ़ते हैं। किस रूप में है? इस विषय में लोग जानकर भी कभी-कभी इस कर्म बंध की प्रक्रिया को अनदेखा कर देते हैं। वह कर्म का बंध आत्मा में केवल उन्हें ऊपर-ऊपर दिखाई देता है जबकि आत्मा में वह कर्म का बंध इस तरह से एक क्षेत्रअवगाह होकर हो रहा है कि दोनों के प्रदेश आपस में मिल करके दोनों अपने स्वभाव को खो चुके। जब सोना और चाँदी दोनों को गला करके एक धातु का निर्माण किया जाता है या किसी आभूषण का निर्माण किया जाता है तो हम उसके किसी भी कोने में यह नहीं देख सकते कि यहां पर ये सोना है यहां पर ये चाँदी है जब हम किसी पानी को दूध में या दूध को पानी में मिला देते है तो उसमें जैसे इन प्रदेशों में संश्लेष हो जाता है, एक क्षेत्रावगाह एक-एक प्रदेश में एक-एक जल का अंश प्रवेश कर जाता है, ऐसे ही आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में कर्म का बंध प्रति समय होता है। उस कर्म बंध के होने पर आत्मा भी पराश्रित है और कर्म उस आत्मा को पराश्रित करने के लिये एक कारण बन जाता है। कर्म का बंध आत्मा के साथ इस रूप में जब स्वीकार किया जाता है तभी वह सही रूप में तत्व का प्रदान कहलाता है, पढ़ने के बाद भी जब ये सुनने में मिलता कि आत्मा से कर्म का बंध तो ऐसे है जैसे गाय के गले में रस्सी बंधी है। अगर गाय के गले में रस्सी को तरह से कर्म बंध है तो इसका मतलब है उस आत्मा की बंध तत्त्व की भूल है जो इस प्रकार की व्याख्या करना है।

यह बंध तत्त्व अपने आप में एक इतना बड़ा सिद्धांत लिये हुये है कि इस

कर्म बंध की प्रक्रिया को समझाने में बड़े-बड़े आचार्य पुष्पदंत जी, आचार्य धरसेन जी महाराज, भूतबलि जी महाराज के द्वारा जो पट्खंडागम आदि ग्रंथ लिखे गये, जो सूत्र लिखे गये, उनमें महाबंध के वह सूत्रों की प्रक्रिया, पूरी-पूरी इस कर्म बंध की प्रक्रिया के ऊपर है। वह कर्म बंध जो 4 तरह का कहने में आता है प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थितीबंध और अनुभाग बंध। उस 4 प्रकार के बंधों की व्याख्या करते हुये उन्होंने लगभग 7 पुस्तकें सूत्रों के माध्यम से महाबंध की लिखी। इसके अलावा **खुद्दाबंध** नाम का एक **षट्खंडागम** का एक खंड है उसमें भी वह बंध की प्रक्रिया है। और **बंध स्वामित्व विचय** के माध्यम से वहां पर भी बंध की प्रक्रिया के बारे में बताया जाता है ऐसा वहां पर सारा का सारा आगम जो हमारे सामने द्वादशांग का जो मूल स्त्रोत है, मूल अंश है उस मूल आगम में ये सब सिद्धांत कर्म सिद्धांत के माध्यम से ही चलते हैं। अगर वह कर्म के सिद्धांत को कर्म के बंध को इस तरह से व्याख्यायित करने लगे तो हमारे लिये केवल जो अध्यात्म ग्रंथ ही प्रधान हो गये हैं, कर्म ग्रंथ, सिद्धांत ग्रंथ हमारे स्वाध्याय से जाने लगे हैं, अध्यात्म ग्रंथ का इतना अधिक ज्ञान हो जाना कि अगर हम उस अध्यात्म के माध्यम से कर्म बंध को अपने आपसे बिल्कुल पृथक् समझते है तो यह भी हमारे ज्ञान का एकांगीपन है। यह भी हमारे ज्ञान का ऐकांतिकपन है। ज्ञान हमें ये बताता है कि हम वस्तु की स्थिती को यर्थाथ रूप में समझें। अगर अध्यात्म में आत्मा की प्रधानता है, पर द्रव्य को चिंतन में नहीं लेने कि प्रधानता है और उस प्रधानता के कारण से अगर कोई आत्मा यह मान्यता करता है, मेरा आत्मा कर्म से अबद्ध है, अस्पृष्ट है तो वह भावना है, न कि वस्तु स्थिति। उस भावना को यदि हम वस्तु स्थिति के रूप में लेकर सामने आ गये तो और वह कर्म का बंध हमारे लिये केवल ऊपर-ऊपर है या वह गाय के गले में बंधी हुई रस्सी की तरह, तो हमारा यह ज्ञान एक तरह से बंध तत्व की भूल तो है ही सात तत्वों में से किसी एक तत्व की भूल हो जाती है तो सातो ही तत्वों की भूल हो जाती है। केवल बंध तत्त्व की भूल होने पर संवर, निर्जरा, मोक्ष सभी तत्वों की भूल हो गई।

क्योंकि अब हम उस बंध को काटने की प्रक्रिया नहीं सुनेंगे। अब हम केवल उस आत्मा की भावना करेंगे अबद्धं अस्पृष्टं एकोहं अबंघोहं ये जो भावना हम करेंगे इस भावना से ही हम उस कर्मबंध से दूर करने का भाव करेंगे तो

आचार्य कहते हैं कि हमारी वह कर्म बंध काटने की प्रक्रिया छूट गई। केवल उस भावना से कर्म बंध नहीं छूट सकता। अगर आत्मा कर्म बंध से इस तरह से पृथक है तो एक सांख्यमत है। षट्दर्शन में उसमें भी यही दिखाया जाता है कि आत्मा तो शुद्ध है आत्मा को वहाँ पुरुष रूप में कहा जाता है और प्रकृति को कर्म रूप में कहा जाता। अपने यहां भी कर्मप्रकृति के रूप में ही वर्णन आता और आत्मा को पुरुष माना जाता। बहुत कुछ वह शब्द साम्य है लेकिन सिद्धांत में बहुत अंतर है। **"अस्ति पुरुषश्चिदात्मा"** ऐसा आत्मा के लिये भी पुरुष कहना ये **आचार्य अमृतचंद्र जी महाराज** ने कहा। अन्यत्र भी हमें कुंदकुंदाचार्य जी के ग्रंथ में भी मिलता है पुरुसायारो अप्पा इत्यादि के रूप में कि उस आत्मा को पुरुष कहा जाता है और जो बंधने वाली प्रकृति है उस प्रकृति को अगर हम अपने से बिल्कुल भिन्न मानते है तो **सांख्य मत** कहता है कि प्रकृति ही बंधती है प्रकृति ही मुक्त होती आत्मा तो न बंधती है, न मुक्त होती है। आत्मा तो हमेशा अपने स्वभाव में शुद्ध ही रहती है। एक बात और आ जाती है जब हम आत्मा के स्वभाव की चर्चा करते हैं।

क्या आत्मा एकांत से त्रैकालिक शुद्ध है?

हम कहते हैं **आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है,** आत्मा त्रैकालिक पवित्र है अगर हम इस तरह की व्याख्या ही और इस तरह की एकांगी दृष्टिकोण को अपना करके केवल आत्मा के स्वरूप की व्याख्या करते है तो यह भी हमारे लिये अन्याय होगा। **आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है एक नय की अपेक्षा से है, सर्वथा नहीं है।** त्रैकालिक शुद्ध कहने से हमारे लिये आत्मा के वे गुण धर्म आ जाते है जो कर्म से निरपेक्ष हो। जब हम उस परम पारिणमिक भाव वाले उस शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से या परम भाव के ग्राहक उस शुद्ध नय की अपेक्षा से देखते है तभी वह आत्मा ज्ञान स्वरूप, व त्रैकालिक सत्ता वाला शुद्ध होता है अन्यथा अगर आत्मा हर अवस्था से, हर नय की अपेक्षा से त्रैकालिक शुद्ध हो जायेगा तो यह कर्म सिद्धांत हमारे लिये झूठा हो जायेगा।

वह व्यवहार नय भी उतना ही सत्य है, जो व्यवहार नय कहता है कि आत्मा कर्मों से बंधा है और निश्चयनय कहता है कि आत्मा कर्मों से अबद्ध है।

अगर हम एक ही सुर में एक गीत को गायेंगे तो हमने पढ़ा है एक झूठ को यदि बार-बार बोला जाता है तो वह सच जैसे हो जाता है उसी तरह से एक नय की व्याख्या यदि हम हजार बार करेंगे तो हमारे दिमाग में वही नय आ जायेगा दूसरा नय हमसे छूट जायेगा, हमारे लिये एकांत रूप से वह नय दुर्नय बन जायेगा। सम्यक् नय नहीं कहलायेगा। **'निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षो वस्तु तेऽर्थकृत्।'** ऐसा **आप्त मीमांसा** में **आचार्य समंतभद्र** कहते है अगर हम निरपेक्ष नय का कथन कर रहे हैं तो वह मिथ्या है। जिस व्यवहार में निश्चय की सापेक्षता नहीं, वह व्यवहार भी मिथ्या और जिस निश्चयनय में व्यवहार को सापेक्षता नहीं वह निश्चय भी मिथ्या। हमें नयों की व्याख्या के साथ में वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान करने के लिये दोनों नयों के माध्यम से वस्तु को बताना चाहिये। वस्तु को हमेशा हमेशा शुद्ध मानना और मुख्य रूप से जो जीव द्रव्य है संसारी द्रव्य है उसके लिये हमेशा से एक ही ज्ञान रखना कि हमारा जीव द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध है यह एकांत हमारे अंदर यदि उत्पन्न होता है तो यह भी हमारे लिये एक तरह से मिथ्याज्ञान की ओर जा सकता है। इतना तक आग्रह हो जाता है कि द्रव्य तो त्रैकालिक शुद्ध है उसकी पर्याय अशुद्ध हैं देखो! जब ये विवरण सामने आते है तब आप आलाप पद्धति है। तब आप आलाप करने का जो तरीका हमको आना चाहिये उस तरीके से ये बात बिल्कुल गलत सिद्ध होती है। आलाप पद्धति के अंदर जितने भी नय दिये हैं आप हमें बताओ किसी भी नय के अंदर इस तरह का विषय हो कोई भी नय ऐसा विषय करता हो जिसमें उसका द्रव्य शुद्ध हो और पर्याय अशुद्ध हो ऐसा कोई भी नय आपको आलाप पद्धति में नहीं मिलेगा। ये आलाप करने का एक बिल्कुल गलत तरीका है, जिसमें हम द्रव्य और पर्याय का एक साथ कथन करें और द्रव्य को हम त्रैकालिक शुद्ध कहें और पर्याय को केवल अशुद्ध कहें ये हमारे व्याख्यान करने का एक अपलाप है और इस अपलाप को स्वीकार करना भी ये बताता है कि हमारे अंदर नयों का ज्ञान नहीं है।

जब नय ज्ञान दिया जाता है तो उसमें अपेक्षायें लगाई जाती हैं। द्रव्यार्थिक नय भी शुद्ध है, अशुद्ध है, कर्म सापेक्ष है, कर्म निरपेक्ष है। जब हम कर्म निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा संसारी आत्मा को देखते है तो वहां लिखते है कि वह सिद्ध समान है। किस अपेक्षा से शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की

अपेक्षा से लेकिन जब हम कर्म सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा देखते है तो वह आत्मा संसारी है, उसका जन्म मरण होता है। पर्यायार्थिक नय में भी शुद्ध पर्याय भी है, अशुद्ध पर्याय भी है जब हम शुद्ध पर्याय की अपेक्षा देखेंगे तो आत्मा में सिद्ध समान शुद्ध पर्याय है और जब हम अशुद्ध पर्याय की अपेक्षा देखते हैं तो आत्मा में नरनारकादि अशुद्ध पर्याय भी है। जब हम और व्यवहार नय में देखते है तो एक सद्भूत व्यवहार नय आता है और एक असद्भूत व्यवहार नय आता है। उस सद्भूत व्यवहार नय में शुद्ध भी है और अशुद्ध भी है। जब शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा से देखते है तो वहां लिखते हैं, **गुणगुणिनो शुद्ध पर्याय पर्यायिणो** यानि शुद्ध गुण में और शुद्ध गुणी में जब हम विषय बनायें। शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायी में जब हम सम्बन्ध बनायें तब वह शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय कहलायेगा। उसी तरह जब अशुद्ध गुण और अशुद्ध गुणी में अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायी में जब हम सम्बन्ध जोड़ेंगे तो वह अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय कहलायेगा। कोई भी नय इस तरह का व्याख्यान नहीं करता कि द्रव्य को शुद्ध कहे और उसकी पर्याय को अशुद्ध कहे। आप विचार करो किसी भी नय के माध्यम से नयचक्र में ये नहीं कहा गया और हम ये सुनते है बड़े-बड़े विद्वानों के अंदर ये धारणा बनी है कि द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध हैं पर्याय ही अशुद्ध है। ये धारणा बिल्कुल गलत है न तो द्रव्य एकांत से त्रैकालिक शुद्ध है और न ही पर्याय एकांत रूप से उस अशुद्ध द्रव्य से अशुद्ध पर्याय निकल रही है क्योंकि हमने पहले ही कहा है कि जब शुद्ध द्रव्य को आप आलंबन लोगे तो आपको शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय को ही अपना विषय बनाना पड़ेगा। जो नय शुद्ध द्रव्य का आलंबन लेता है वह शुद्ध द्रव्य और शुद्ध पर्याय का व्याख्यान करता है। वह शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है। जब वह अशुद्ध का व्याख्यान करता है तभी उसके अशुद्ध गुण और अशुद्ध पर्याय अशुद्ध द्रव्य का कथन करते हैं। द्रव्य शुद्ध है और पर्याय अशुद्ध तो यह कथन करना मिथ्या है और यह आलाप भी हमें वस्तु स्थिति से दूर कराने वाला है। आप विचार करें, हम वस्तु स्थिति का कथन किस अपेक्षा से कर रहे हैं? वो अपेक्षा अपने सामने रखें। अगर आप कर्म निरपेक्ष को मान रहे हैं तो वह एक पहलू है, ज्ञान है, वस्तु की स्थिति नहीं। कर्म सापेक्ष मान रहे है वह भी एक ज्ञान है, एक नय है और ये सब नय हमारे एक अभिप्राय हैं। जिन अभिप्रायों के माध्यम से हम अपने उस श्रुत के

माध्यम से उस वस्तु की समग्र स्थिति को जानते हैं। जब हम इस बंध करण को देखते हैं और बंध करण की व्यवस्था देखने के बाद में हमें इस बंध को भी उसी तरह स्वीकार करना चाहिए। व्यवहार नय से आत्मा और कर्म का बंध होता है। व्यवहार से आत्मा कर्म बंध से रहित नहीं है, हमें इस व्यवहार नय को भी उतनी ही दृढ़ता के साथ स्वीकार करना चाहिये जितनी दृढ़ता से हम निश्चयनय के साथ रखते हैं और सुनते हैं। निश्चय से आत्मा कर्म बंध से रहित है यह तो बहुत सुनने में आता लेकिन व्यवहार से भी ये सत्य है कि आत्मा कर्म से बंधा हुआ है ये लोग बहुत कम बोलते हैं और बोलने की हिम्मत नहीं कर पाते है क्योंकि ये हमारे स्वाध्याय की एक कमी रहती है। हम सुना सुनाया ज्यादा बोलते है। अपना पढ़ा हुआ और आचार्यों के द्वारा लिखा हुआ नहीं बोलते। उस तत्त्व का चिंतन नहीं करते उसका ये परिणाम है कर्म बंध अब ये होता है तब कर्म बंध की इस प्रक्रिया में हमें 4 प्रकार के बंध होते है 1. प्रकृति बंध 2. प्रदेश बंध 3. स्थिति बंध 4. अनुभाग भाग।

दश करण

१- बंध करण

उस कर्म बंध के भी आचार्यों ने दो 2 भेद किये है एक कर्म बंध भी बंध है और एक अकर्म बंध भी वहाँ है यानि एक कर्म बंध एक अकर्म बंध। जिसे हम अपनी भाषा में कर्म बंध कह रहे है वह वस्तुतः सिद्धांत में अकर्मबंध कहा जाता है। नया जब भी आत्मा में बंध होता है तब उसे अकर्म बंध कहते हैं जो कर्म रूप में नहीं था पहले आत्मा में अब वह आत्मा में कर्म के रूप में बंध गया, अकर्म का बंध हुआ इसलिये उसका नाम हुआ अकर्म बंध।

यानि जो पुद्गल वर्गणायें कर्म के योग्य आत्मा के प्रदेशों पर पहले से स्थित थी लेकिन बंधी नहीं थी जब वह बंध गई, कर्म रूप में नहीं थी उन कर्म रूप में स्थित उन वर्गणाओं को कर्म के रूप में बांधने का नाम है अकर्म बंध। कर्म बंध क्या कहलाता है? तो आचार्य कहते है जो कर्म हमारे अंदर बंधा है उसी में उत्कर्षण होना, अपकर्षण होना, संक्रमण होना यह कर्म बंध कहलाता है। ये नई चीज है। सिद्धांत ग्रंथों में सब लिखा है। उत्कर्षण अपकर्षण और संक्रमण ये तीनों ही कर्म के अंदर कर्म के द्वारा ही हो गये और उस संक्रमण,

उत्कर्षण, अपकर्षण के बाद ही जब कर्म के स्वरूप में परिवर्तन आ गया वह उसका कर्म बंध कहा जाता है।

२– उत्कर्षण करण

यानि जैसे एक बंध करण है उसी प्रकार एक उत्कर्षण करण भी होता है। उत्कर्षण में क्या होता है यानि कर्म की स्थिति और अनुभाग को बढ़ा देना। जो कर्म बंध चुका है उसी की स्थिति और अनुभाग जब बढ़ जाता है तब उसे **उत्कर्षण करण** कहते हैं।

३– अपकर्षण करण

कर्म ही स्थिति और अनुभाग को जब हम घटा देते हैं **अपकर्षण** कहलाता है। मुख्य रूप से स्थिति और अनुभाग ही आता है।

४– संक्रमण करण

संक्रमण में क्या होता है? वह पर प्रकृति रूप संक्रमण हो जाता है। कर्म प्रदेशों का अन्य जो सजातीय प्रकृति होती है उन सजातीय प्रकृति रूप परि-वर्तन हो जाना यह **संक्रमण** कहलाता है इस संक्रमण उत्कर्षण और अप-कर्षण तीनों में जो करण होते है इनमें भी वस्तुतः हम देखे संक्रमण के भी 4 भेद होते हैं। प्रकृति संक्रमण, प्रदेश संक्रमण, स्थिति संक्रमण और अनुभाग संक्रमण। अब इसमें हम देखें तो स्थिति का संक्रमण होना क्या कहलाया? स्थिति का घटना, स्थिति का बढ़ना ये **स्थिति संक्रमण** कहलाता है। स्थिति का घटना, बढ़ना जो उत्कर्षण अपकर्षण था। यह वस्तुतः स्थिति संक्रमण में ही गर्भित हो गया। अनुभाग का भी जो घटना-बढ़ना था वह भी इस स्थिति में गर्भित हो गया यानि कि संक्रमण के 4 भागों में जो स्थिति और अनुभाग का संक्रमण होता है उसी में उत्कर्षण और अपकर्षण करण गर्भित हो जाते हैं।

प्रकृति और प्रदेश में प्रकृति संक्रमण क्या कहलाया? एक प्रकृति का दूसरी प्रकृति में परिवर्तित, संक्रमण हो जाना प्रकृति संक्रमण है। प्रदेश संक्रमण क्या कहलाया? एक सजातीय प्रकृति का दूसरी सजातीय पद्धति के प्रदेशों

में प्रदेशों का पहुंच जाना ये कहलाता है प्रदेश संक्रमण। अब देखा जाये इस प्रकृति और प्रदेश संक्रमण में कोई अंतर नहीं है। क्या कहा यानि ये जो प्रदेशों का संक्रमण हो रहा है प्रकृति के बिना नहीं और प्रदेशों का संक्रमण होना ही वस्तुतः प्रकृति का संक्रमण है। इसलिये प्रदेश संक्रमण को हम प्रकृति के संक्रमण में ही गर्भित कर देते है यानि पर प्रकृति रूप से संक्रमण होने का नाम ही केवल संक्रमण बचता है। संक्रमण में मुख्यता किसकी हो गई केवल पर प्रकृति रूप से संक्रमण होना उसी में यह प्रदेश संक्रमण हो गया। बाकी जो स्थिति का संक्रमण, अनुभाग संक्रमण था वो चला गया उत्कर्षण करण और अपकर्षण करण में। संक्रमण करण में मुख्यता किसकी है? पर प्रकृति रूप से संक्रमित हो जाना ये संक्रमण करण ही मुख्यता में आ जाता है। इसलिये **बंधे संकमदि** यानि बंध के होने पर ही उस सजातीय प्रकृति में अन्य प्रकृति का संक्रमण होता है। ये बंध के होने पर होता इसलिये ये क्रम से भी ऐसा लिखा गया है पहले बंध करण, फिर उत्कर्षण करण। कहीं-कहीं पर संक्रमण पहले लिखते है फिर उत्कर्षण फिर बंधकरण और अपकर्षण लें पहले तो बाद में आ जाता है संक्रमण करण, इस तरह से लगभग ये 11 करण हो गये।

८-सत्त्व करण

बंध होने के बाद सत्व की स्थिति बनती है। पहले समय में बंध हुआ और बंध होने के बाद में वहीं कर्म सत्ता के रूप में चला गया और सत्व के रूप में आत्मा में अवस्थित हो गया। अब सत्व कब तक कहलायेगा इस विषय में आचार्यों के दो मत है क्या कह रहे हैं? सत्व कब तक कहलायेगा, बंध होने के बाद में सत्व हो गया और सत्व के बाद में एक करण और आने वाला है जिसे उदयकरण कहते हैं। जिस समय वह सत्व में गया हुआ कर्म नाश को प्राप्त होगा तो उसे उदय में आना है और उदय में जब वो आयेगा और अंतिम समय जब वो उदय में रहेगा उस उदय के समय को छोड़ करके बांकी का समय उसका सत्व का कहलायेगा। यानि बंध के एक समय को छोड़ दो और उदय के समय को छोड़ दो क्योंकि उसकी अलग से संज्ञा दी जा रही है। माने कोई भी कर्म 100 समय की स्थिति लेकर आया है तो एक समय उसका बंध का और एक साथ उसका उदय का शेष 98 समय उसके सत्व।

ये भी एक व्याख्यान है। ये भी एक कथन है। इसके अनुसार यदि हम चलते है तो हमारे लिये उदय को सत्व नहीं माना जाता है लेकिन एक आचार्य के अभिप्राय से ये भी कहा जाता है कर्म का बंध होने के बाद जब तक उसका निर्लेपन न हो, जब तक उसका क्षय न हो तब तक वह **सत्त्वकरण** कहलाता है। इस अपेक्षा से देखेंगे तो जब तक उसका निर्लेपन न हो यानि क्षय न हो। अगर वह उदय में भी है तो आत्मा में संबंध बनाये हुये है उदय होने के बाद जब उसकी निर्जरा हो जायेगी तभी उस सत्व का प्रभाव कहा जायेगा तब तक वह उसके अंदर सत्ता में है इस अपेक्षा से भी वहां पर सत्व माना जायेगा। माने उदय के समय को भी सत्व को स्वीकार करना अथवा कहीं-कहीं पर आचार्यों के द्वारा उदय को उदय रूप मानना और उससे पहले सत्व रूप में मानना ऐसे ये दो कथन दो आचार्यों के प्रतीत होता है। एक कथन षटखंडागम के सूत्र के अनुसार है और एक कथन जय धवला में मिलता है। कषाय पाहुड़ सूत्रों के अनुसार जो अंत तक सत्व मानते है वो **षट्खंडागम** सूत्रों से है और जो अंत में अंतिम समय पर उसका उदय मानकर उससे पहले सत्व मानते है यह **जयधवल** के अनुसार है। इस तरह इस सत्व की प्रक्रिया में भी कुछ विशेषता आ जाती है।

६-उदय करण

सत्व हुआ तो उसका उदय होगा। कभी भी कर्म उदय को प्राप्त किये बिना क्षय को प्राप्त नहीं होंगे। जो कई तुमने एक बार बांध लिया जिस रास्ते से बांधा है उसी रास्ते से निकलना कोई दूसरा रास्ता नहीं है। सुन रहे हो! कोई दूसरा रास्ता नहीं है कर्म के जाने का जिस रास्ते से आये हो, उसी रास्ते से जाना। कोई दूसरा रास्ता उस कर्म के उदय का नहीं है इतना अवश्य है कि कोई-कोई कर्म अपना फल स्व मुख से देता है और कोई कर्म अपना फल पर मुख से देकर जाता है। लेकिन आयेगा तो हमेशा-हमेशा उदय में होकर ही जायेगा, उसको बोलते हैं उदय और इस उदय का अनुभव ही आत्मा को होता है। बंध हो गया हमें कोई अनुभव नहीं, सत्व पड़ा है हमें कोई अनुभव नहीं है। उत्कर्षण, अपकर्षण इसमें खदवदी होती रहती है। हमें उसमें कोई अनुभव नहीं है। अनुभव यदि आत्मा को कर्म का होता है तो केवल इस उदय के माध्यम से ही होता है इसलिये इस कर्म के उदय में ही पूरा का पूरा

हिसाब चलता रहता है जिसके जैसे कर्म का उदय है उसको वैसी अनुभूति और फल मिलता रहता है। हम ये कहते है कि ये कर्म के उदय का ही सबसे बड़ा सिद्धांत है साता का उदय होगा तो सुख की अनुभूति होगी असाता का उदय होगा तो दुःख की अनुभूति होगी और उस सुख दुख की अनुभूति में मुख्य रूप से हमारा उदय करण ही काम में आता है। सत्व में भले ही साता बैठी रहे असाता बैठी रहे, कुछ नहीं होने वाला है, देखने में जरूर आ जाता है कोई बीमार पड़ गया, बुखार आ गया, शरीर में रोग हो गया तो कहते है देखो! उसके असाता सत्ता में बैठी है असाता सत्ता में नहीं बैठी, असाता उदय में है। सत्ता में तो सब कुछ बैठा है साता भी, असाता भी। उसके असाता ही असाता का उदय है जिसके पास ज्यादा दुख होते हो और जिसको ज्यादा सुख हो रहा हो तो कहते है साता ही साता का उदय है। कोई जीव न एकांत रूप से सुखी है, न दुखी है क्योंकि उदय के बाद एक उदीरणा की प्रक्रिया भी होती है।

७-उदीरणा करण

उदीरणा करण में उदय के साथ ही उदीरणा करण होता है जिन कर्मों का उदय चल रहा होगा मुख्य रूप से उदीरणा करण होता है कुछ विशेषताये है वो अलग बात है। वो अलग से आपको बताया जा रहा है। लेकिन सामान्य रूप से उदय वाली कर्म प्रकृति के साथ ही उदीरणा चलती है किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उदीरणा रूक जाती है उदय बना रहता है, यह भी होता है लेकिन उस उदीरणा के लिये हमें उदय आवश्यक हो वो ध्यान में रखना। ऐसे-ऐसे कर्म है 6 माह तक साता रूप कर्म की उदीरणा चलती रहती है क्या सुन रहे हो आप कभी 6 महीने तक निरंतर सुखी नहीं रह सकते लेकिन देवों में साता है, रति है, हास्य है इन कर्मों का उदय छः महिने तक रह सकता है ये सिद्धांत ग्रंथों में कहा जाता है। अगर 6 महिने तक उन्हें लगातार सुख की अनुभूति लेकिन 6 महिने के बाद कुछ असाता की अनुभूति होगी क्योंकि बढ़ के उदीरणा का समय नहीं है। इन कर्म के उदय और उदीरणा के समय को देख करके हम यह जान सकते हैं कौन जीव लगातार कितने समय तक सुखी रहता है। नारकी जीवों में भी कहा जाता है हमेशा उसके अंदर असाता का अरति का शोक का उदय है वह भी लगातार

नहीं रहता है उसमें भी बीच-बीच में साता का उदय आता है लेकिन वो इतना हल्का होता है कि उसके लिये उन्हें कोई साता की अनुभूति नहीं हो पाती है। और क्षणिक मात्र की ही हो पाय वह भी उनके लिये सुख देने वाला नहीं हो पाता इसलिये मुख्यता से कहा जाता है कि वहां पर असाता का ही उदय है। वस्तुतः असाता और साता सबके उदय हमारे अंदर हर समय बदल बदल कर आते रहते हैं इसलिये न कभी हम सुखी रह सकते है, न एकांत रूप से दुखी, यह भी एक उदीरणा के प्रकरण में आ जाता है। ये उदय, उदीरणा यहां तक हो गया। अब इसके बाद में जो मुख्य तीन करण और बचे उसमें पहला है।

८-उपशांत करण

उसमें क्या होता है कि कोई भी कर्म का जब बंध होता है तो उसके कुछ परमाणु इस तरह से परिवर्तित हो जाते है उस कर्म के कि वे अपने आप ही हम उसे अपकर्षित करके भी उदीरणा के योग्य नहीं बना पाते है, उनकी प्रतिज्ञा रहती है कि अब हम उदीरणा को प्राप्त नहीं होंगे कब तक? जब तक कि अनिवृत्ति करण का 9वां गुणस्थान नहीं आयेगा तब तक उनकी प्रतीज्ञा है, उस प्रतिज्ञा को कोई नहीं टाल सकता अनिवृतिकरण के बिना उपशांत हुये उस करण का हम उदीरणा के द्वारा लाकर के पहले हम उनका विनाश नहीं कर सकते ये उन कर्मों का स्वभाव है और उस स्वभाव का नाम है उपशांत करण। इसी तरह एक होता है।

९-निधत्ति करण

निधत्ति करण में क्या वह जो कर्म बंधा है ऐसे भी कुछ कर्म के परमाणु अपने आप में हो जाते है कि स्वभाव से ही उनकी स्थिति बन जाती है कि हम उन्हें न उदीरणा के योग्य कर सकते है न हम उनका संक्रमण कर सकते ये कहलाता है निधत्तिकरण उनका अपकर्षण हो सकता है। उनमें उदीरणा और संक्रमण नहीं होता उसका नाम है निधत्ति। एक और आपने सुना होगा।

१०-निकाचित करण

वह निकाचित कर्म में जो कर्म परमाणु परिवर्तित हो जाते है तो उसमें न उत्कर्षण होता है, न अपकर्षण होता है न उसमें संक्रमण होता है, न उसमें उदीरणा कोई भी करण तब तक नहीं हो सकते जब तक कि 9वां गुणस्थान प्राप्त न हो जाये। ये निधत्ति, निकाचित और उपशांतपना प्रत्येक कर्म में होता है यानि की हमारे अंदर सभी आत्माओं के अंदर ऐसी कर्म हरेक प्रकृति के साथ बंध कर पड़े हुये बैठे हैं जिनकी जब तक कि हम अनिवृतिकरण परिणाम न करले तब तक हम उनके लिये कोई भी प्रकार से परिवर्तित नहीं कर सकते है। जो जिनकी शर्तें है वो उसी रीति में रहेगे अगर वह निकाचित करण है तो उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन उत्कर्षण, अपकर्षण, सं-क्रमण, उदीरणा आदि नहीं हो सकते हैं। आप समझ सकते है उस चीज को मानो आप यहां आये **मनन** का यह कार्य आयोजित किया ये आपका एक तरह से क्या हो गया बंध हो गया 9 से 15 तक का क्या था? आपका ये बंध हो गया। जैसे ही आपने प्रवेश किया आप यहां आये आपने बंधन को स्वीकार किया ये बंध करण हो गया। अब बंध के बाद में उत्कर्षण, उत्कर्षण क्या कहलाया? अगर हम किसी एक जीव की अपेक्षा से देखे कि इतने कर्म परमाणु यहां बंध को प्राप्त हैं अब इनमें से कोई उत्कर्षण की भी प्राप्त हो गया कैसे मान लो किसी को 15 तारीख को न जाकर के 16 को जाना है 17 को जाना है तो वह क्या कहलायेगा वो उनका उत्कर्षण हो गया। अप-कर्षण क्या हो गया? समय से पहले ही कुछ निकल गये ये क्या हो गया ये अपकर्षण हो गया। कोई 15 तक न रूक कर 14 तक चले गये 13 को चले गये तो ये क्या हो गया अपकर्षण हो गया। इसके अलावा संक्रमण में क्या होता है मान लो कोई किसी ग्रुप का था, कोई किसी ग्रुप का अब वह व्यक्ति दूसरे ग्रुप से निकलकर आ गया, तो हो गया उसका संक्रमण, जैसे कि आपकी महासभा आदि में होता है। आपकी पंचायत में होता है ये कहलाता है संक्रमण। अब इसके बाद उदय आता है जिस ढंग से हम आये थे उसी ढंग से समय पर यदि कर्म चला जाता है निकलता है तो वह कहलाता है उदय और उदीरणा क्या कहलाती है कि उसका **अपक्वपाचनं उदीरणा** और उदीरणा में और उदय में यह अंतर होता है। अगर कर्म बंधा है और बंधने के बाद किसी तरह का कोई संक्रमण नहीं हुआ है उत्कर्षण, अपर्कषण नहीं

हुआ हो तो वह कर्म जब उदय में आयेगा तो उदय कहलायेगा यानि किसी भी उपाय के द्वारा उसकी निषेक स्थिति को परिवर्तित नहीं किया हो ऐसे कर्म के उदय में आने का नाम उदय है और जब वही किसी न किसी अपकर्षण आदि के माध्यम से उसको समय से पहले लाकर के उसे खपा देते हैं तो वह कहलाता है उदीरणा करण। ये भी होता है मान लो उदय में आना था आपको अपने समय 15 तारीख को यहां पर किसी ने कोई गलती की, गड़बड़ की तो क्या किया समय से पहले ही उसको निकाल करके बाहर कर दिया इसका नाम हो गया उदीरणा। समझने के लिये 10 करण है बहुत सिम्पल सी अब उन 10 करण में उत्कर्षण भी, अपकर्षण भी, उदय भी, उदीरणा भी उपशांत में क्या होता है? मान लो किसी व्यक्ति का negative भाव ऐसा है जो कह रहा है कि मैंने गलती तो की लेकिन मैं आऊंगा नहीं, डटकर बैठा है मानो आप उदीरणा नहीं करा सकते वो कह रहा है, हमारे लिये दण्ड दे दो उसके लिये तैयार है आप हमें पीछे बिठाल दो ये क्या हो गया अपकर्षण। आप हमें आगे बिठाल दो, ये क्या हो गया उत्कर्षण। आप हमें इस ग्रुप से इस ग्रुप में डाल दो इसके लिये भी हम तैयार है। जबरदस्ती समय से पहले बाहर मत करो ये क्या हो गया उपशांतकरण। निधत्तिकरण में तो किसी का ऐसा भी Negative भाव है जो कह रहा है कि मैं न तो उदीरणा को प्राप्त होऊंगा यानि की जबरदस्ती में बाहर नहीं जाऊंगा समय से पहले और न ही किसी ग्रुप में संक्रमित होऊंगा मैं तो जहां हूं वहीं रहूंगा बस आप चाहे तो आगे बिठाल दो, पीछे बिठाल दो इतना कर सकते हो। इसका नाम हो गया निधत्तिकरण। समझ में आया और निकाचित करण में वो बिल्कुल ऐसा जिसे बोलते है मट्ठर ऐसा हो जाता है कि जिसके लिये आप निकालने ही बात तो बहुत दूर हो गई समय से पहले उसके वह संक्रमण को भी तैयार नहीं। वह कहता है न आगे बैठूंगा, न पीछे, जहां हूं वहीं बैठूंगा इसका नाम क्या हो गया निकाचितकरण। इस तरह से इन कर्मों के परमाणुओं में इस प्रकार के स्वभाव पड़ जाते है। आचार्यों ने एक शब्द दिया प्रतिज्ञा माने कर्म के अंदर भी ये प्रतिज्ञा आ जाती है, संकल्प आ जाता है कि हम ऐसा ही करेंगे ऐसा नहीं करेंगे, इस प्रतिज्ञा को भी हम उसकी भाव शक्ति कह सकते हैं, जो हमने शुरूआत में बताया था कि कर्म के अंदर भी ऐसी भाव शक्ति पड़ जाती है जिसका प्रभाव हमारी आत्मा पर अवश्य ही

पड़ा रहता है। उस भाव कर्म का हमें अनुभव होता है उस शक्ति का क्वचित् कदाचित् हमारे लिये अगर विनाश होगा तो करण-परिणाम के माध्यम से होगा, इसलिये आचार्य कहते है 8वें गुणस्थान तक 10 ही करण चलते हैं। एक आयु का संक्रमण कारण छोड़ करके, आयु का संक्रमण करण नहीं होता। 9वें गुणस्थान से उपशांत, निधत्ति, निकाचित इनकी व्युच्छित्ति हो जाती है और इसके अलावा जो 7 करण बचे ये 7 करण चलेंगे आपके आगे के 11वें गुणस्थान तक। 11वें में एक मात्र मिथ्यात्व की प्रकृति, सम्यक् मि-थ्यात्व की प्रकृति का संक्रमण करण होता है। वह संक्रमण करण वहाँ छूट करके आगे के 12वें 13वें तक 6 करण चलते रहते है। मतलब विचार करो केवली भगवान के अंदर कितने करण चल रहे हैं- कर्म का बंध भी हो रहा है, कर्म का उत्कर्षण भी हो रहा है, कर्म का अपकर्षण भी हो रहा है, कर्म का सत्व भी है, कर्म का उदय भी चल रहा है और कर्म की उदीरणा भी चल रही है ये 6 करण केवली भगवान के अंदर भी चल रहे हैं। उसके बाद इन 6 करणों में बाकी के 4 करण छूट जाते है 2 करण बस सत्व और उदय दो करण केवल 14वें गुणस्थान में रह जाते है। यानि 14वें गुण में जो केवली भगवान है उनके लिये कर्म का बंध नहीं है, अपकर्षण, उत्कर्ष कुछ भी नहीं है केवल वहाँ पर सत्व है और कर्म का उदय है। अब वह सत्व ही निकल रहा उदय के माध्यम से। केवल इतनी प्रक्रिया वहां रह जाती है और उसके बाद वह जब उदय और सत्व का पूरा नाश हो गया, सिद्धत्व की प्राप्ति हो गई। सब कर्मों से, करणों से रहित अवस्था हो गई। इसका नाम है 10 करणों की सामान्य व्यवस्था। इसमें भी बीच में एक ईर्यापथ आस्त्रव आता है यानि केवली भगवान के लिये जो कर्म का बंध होता वह कर्म का बंध कैसा होता है कि वह एक समय की स्थिति वाला कहा जाता है वस्तुतः वो एक समय की स्थिति भी नहीं है क्योंकि इससे पहले और कर्म की बंध की स्थिति को बढ़ा नहीं सकते वस्तुतः वो कर्म वहां पर एक समय भी ठहर जाये तो भी वह सत्ता को प्राप्त हो जाये लेकिन वहां पर ठहरता नहीं है एक फ्लो है, एक प्रवाह है। कर्म आत्मा में आकर चला जाता है और उसी का नाम है ईर्यापथ आस्त्रव। एक समय की स्थिति वाला जघन्य बंध कहा जाता है वस्तुतः वह बंध उस आत्मा के लिये किसी भी प्रकार बंध का कारण नहीं है, केवल एक प्रवाह मात्र रहता है। इस तरह से सामान्य से 10 करणों को दिमाग

में रख सकते हैं। और हमारे लिये ये कर्म बंध की व्यवस्था बहुत अच्छे ढंग से आनी चाहिये जिसके माध्यम से हम ये बता सके कि यह जीव, संसारी आत्मा कर्म से बद्ध है और ये जब कर्म से छूटेगा तभी इसे मुक्ति को प्राप्ति होगी केवल इस जीव के लिये इस तरह से कहना कर्म तो ऊपर-ऊपर से हैं, भाव कर्म ऊपर-ऊपर तैरते रहते हैं, कर्म तो गाय के गले में बंधी हुई रस्सी के समान है यह सब **अनर्गलआलाप** है।

कर्म बंध को इस प्रक्रिया को जान करके हम इस व्यवहार नय को भी सुदृढ़ रुप से प्रस्तुत करना सीखें ताकि हमारे लिये व्यवहार भी यथार्थ और सम्यक् ज्ञान की कोटि में आये। अब इस व्यवहार ज्ञान को सम्यग्ज्ञान की कोटि में लाना है। ये व्यवहार नय को झूठा बता-बता करके झूठे लोगों ने हजार बार झूठ बोल करके सच बना दिया। एक झूठ को हजार बार बोलोगे तो वह सही लगने लग जाता है ऐसे ही इस झूठ को बार-बार बोलने पर दिमाग में आ गया कि यह व्यवहार झूठा है। व्यवहार झूठा नहीं है यदि ये व्यवहार झूठा हो जायेगा तो उदय, बंध की प्रक्रिया ये जो संसार में जीव का परिभ्रमण सब झूठा हो जायेगा।

सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, अल्पबहुत्व और भाव ये सब झूठा हो जायेगा और इस तरह से ये सारा का सारा ज्ञान एक प्रकार से सम्य-ग्ज्ञान नहीं कहला रहा है। आज की स्थिति में वो मिथ्याज्ञान की ओर जा रहा है उस ज्ञान को हमें सम्यक् बनाना है और वो तभी होगा जब हम व्यव-हार का भी अच्छे तरह से ज्ञान रखें। व्यवहार नय को वैसा ही सत्य मानकर चलें जैसा कि निश्चयनय को, तभी आपका ज्ञान प्रमाण बनेगा।

ज्ञान जब प्रमाण बन जाता है तो **सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्** कहलायेगा। कर्म के साथ में भी वस्तु की स्वतन्त्रता लगी रहती है। क्योंकि कर्म का स्वभाव कर्म के रुप में ही रहता है और जीव का स्वभाव जीव के साथ ही रहता है। बंध होने के साथ-साथ भी जीव ने अपना स्वभाव अभी छोड़ा नहीं। जीव का जो ज्ञान स्वभाव है वह जीव के स्वभाव के रुप में ही रहता है। वह तो बना हुआ ही है। दर्शन स्वभाव है वो तो बना हुआ ही है वह उसकी स्वतंत्रता है। लेकिन उस ज्ञान स्वभाव को जो बांध रखा है कर्म ने, हम उस परतंत्रता को भी देखें और जब हम इन दोनों स्वभावों को देखेंगे तो हमें दोनों चीजे स्वतंत्र

नजर आयेंगी। कर्म भी स्वतंत्र समझ आयेगा और जीव का स्वभाव भी हमें स्वतंत्र नजर आयेगा। इस प्रकार दोनों के स्वभाव को देखकर उनमें समन्वय गठित कर लेते हैं। निश्चय और व्यवहार नय में आपस में मैत्री भाव है।

चतुर्थ गुणस्थान में रहने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि निश्चय सम्यक दृष्टि है या व्यवहार सम्यक दृष्टि है?

चतुर्थ गुणस्थान में रहने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि, निश्चय सम्यग्दृष्टि इस अपेक्षा से है कि उसने निश्चय से सात कर्मों का क्षय कर दिया, अनन्तानु-बंधी और मिथ्यात्व आदि सात कर्मों का उसने निश्चय से क्षय कर दिया। इसलिए वह निश्चय से सम्यक् दृष्टि है। व्यवहार से सम्यक् दृष्टि इसलिए है क्योंकि अभी वह चतुर्थ गुण स्थान में है, उसे आत्मा का आत्मा में अवस्थान नहीं हो रहा है। आत्मा का आत्मा के रूप से सम्यक् दर्शन के माध्यम से उसे प्रति रुप नहीं हो रहा है अभी वह व्यवहार रुप श्रद्धान सात तत्वों के श्रद्धान में उलझा है इसलिए वह व्यवहार सम्यक्दृष्टि है। जब तक वह शुद्धोपयोग में परिणत नहीं होता है तब तक वह व्यवहार सम्यक दृष्टि है। विवक्षा में अंतर समझना। अनेकान्त दर्शन में कोई भी चीज हम घटित कर सकते है। नय, विवक्षा से कहना आना चाहिए।

अनुभूति चारित्र का विशेष बनेगी इसलिए अनुभूति निश्चय में होती है। यहाँ पर हम निश्चय की अपेक्षा लगा रहे है। वह निश्चित हो गया कि उसके अंदर सात प्रकृतियों का क्षय है उसी का नाम निश्चय सम्यक् दृष्टि है।

'पर द्रव्यन से भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है' यह निश्चय सम्यक् दर्शन कहाँ गया है तो वह फिर कैसे घटित हो रहा है?

पर द्रव्य ते भिन्न आप में रुचि सम्यक् मात्र है, माने आपने अपनी आत्मा में ही वह श्रद्धान रुपपने से उस की परिणति आती है। वह अपनी आत्मा की श्रद्धान रुप परिणति है। वह शुद्धोपयोग में आती है। उससे पहले उस की ज्ञानात्मक परिणति रहती है। चतुर्थ गुणस्थान के शुद्धोपयोग की बात बनने लगेगी क्या? क्यों बनने लगेगी? पर द्रव्य से भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है, यह भावना की अपेक्षा नहीं बनेगी यह तो कहा ही है। भावना का

नाम निश्चय सम्यक् दर्शन नहीं है। देखो! पहले दिन बताया था जो अनेक प्रकार के सन्दर्भ देकर आत्मा की शुद्धि, आत्मा की भावना, निश्चय से आत्मा के स्वभाव की भावना करना लेकिन उसे निश्चय ही सम्यक् दर्शन मानने की भूल नहीं करता।

प्रश्न– निश्चय नय को उत्तीर्ण एवं व्यवहार नय को अनुत्तीर्ण कहा जाता है, इस का क्या अभिप्राय है?

उत्तर– इसका यह अभिप्राय है कि हम उस व्यवहार को छोड़ते चले जाते है। जैसे-जैसे हमें निश्चय की प्राप्ति होती चली जाती है। वैसे-वैसे व्यवहार नय हममें छूटता चला जाता है। इसलिए वह व्यवहार अनुत्तीर्ण कहलाता हैं इसलिए निश्चय से आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति के समय पर व्यवहार हम से छूट जाता है। इसलिए उस व्यवहार को अनुत्तीर्ण कहा जाता है।

प्रश्न– उपशान्त करण क्या सभी कर्मों का होता है?

उत्तर– हाँ सभी कर्मों का होता है।

प्रश्न– उपशान्त करण व औपशमिक भाव में अंतर बताइये?

उत्तर– बहुत अन्तर है। उपशान्त करण में तो कर्म केवल उपशमन को प्राप्त हुआ है। इसमें भी दो प्रकार की उपशामना होती है। एक प्रशस्त और एक अप्रशस्त उपशामना होती है। तो करण के माध्यम से जो उपशम किया जाता है। वह उपशान्त करण है। वह करण किसी भी कर्म का हो सकता है किन्तु औपशमिक भाव मात्र मोहनीय कर्म के उपशम से ही होता है।

अधः प्रवृत्तकरण–

जह्मा उवरिमभावा, हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति।
तह्मा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥48॥

'जह्मा' चूंकि **'उवरिमभावा'** उपरिम जो भाव है वह, **'हेट्ठिमभावेहिं'** यानि उपरिम समय के भाव निचले समय के भावों के साथ **'सरिसगा होंति'** सदृश होते हैं। सदृश माने similar होते हैं। उपरिम समयवर्ती जीवों के

भाव और निचले समयवर्ती जीवों के भाव इस गुणस्थान में या इस प्रक्रिया में जहाँ ये similar होते हैं, **'तह्मा पढमं करणं'** इसलिए इसको प्रथम करण **'अधापवेत्तोत्ति णिद्दिट्ठं'** अध:प्रवृत्त इस प्रकार से कहा जाता है। अध:प्रवृत्त- अध माने निचला ही होता है जो low level के लिए भी जिसका झुकाव है ऐसे अध प्रवृत्त परिणामों को यहाँ पर अध:प्रवृत्तकरण परिणाम के रूप में कहा गया है। मतलब ये है कि जब भी कभी यह जीव विशुद्धि को प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता है तो उन विशुद्धि के परिणामों में जो अध:करण है वो सबसे पहला करण है। इस करण में जो परिणाम होंगे उन परिणामों की विशेषता बताई जा रही है। जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा तो भी उसको करण परिणाम करने होते हैं। यदि वह अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करता है तब भी उसको करण परिणाम करने होते हैं। यदि वह द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तो भी उसको करण परिणाम करने होते हैं। यदि वह चारित्र मोहनीय के कर्मों का उपशम करता है या क्षय करता है तो भी उसको करण परिणाम करने होते हैं। लगभग ये ऐसे समय हैं जब जीव को करण परिणााम करने होते हैं। इसी के माध्यम से आपको समझ आयेगा कि ये विशेष बात जो यहाँ पर बतायी जा रही है अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृतिकरण, वैसे तो ये परिणाम जब भी कभी होते हैं तो उसमें उस गुणस्थान का नाम नहीं आता है। अनन्तानुबंधी की विसंयोजना है, प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन है तो वह तो किसी भी गुणस्थान में इन परिणामों के माध्यम से हो जाता है। आठवें गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण, नौवें गु-णस्थान का नाम अनिवृत्तिकरण। तो इससे पहले अध:प्रवृत्त नाम का कोई गुणस्थान नहीं है। यहाँ पर बताया जाता है कि इसे अध:प्रवृत्तकरण क्यों कहते हैं, इसका क्या कारण है? तो यह जो यहाँ पर अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण आद गुणस्थानों को स्वभाव बताया जा रहा है। अल्प अन्तर्मु-हुर्त में जो परिणाम होते हैं वे असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम हैं। कितने परिणाम है? असंख्यात लोक प्रमाण। समय कितना है? समय अन्तर्मुहुर्त है लेकिन वह अन्तर्मुहुर्त भी बहुत अल्प समय है। अगर हम तीनों करण परिणामों के अन्तर्मुहुर्त की पहले तुलना करें तो हम ऐसा मानकर चल सकते हैं कि अगर हमने अध:प्रवृत्तकरण के परिणाम जाने तो मान लो हमने 16 संख्या मान ली उनकी। अगर हम ऊपर को करेंगे तो संख्यात

गुणा कम हो जाएगा और अगर नीचे से करेंगे तो संख्यात गुणा बढ जाएगा। तो अगर हम उसके परिणामों के काल की संख्या निकालना चाहते हैं तो नीचे के अध:प्रवृत्तकरण का काल तो अधिक आयेगा। यानि यदि 16 समय अध:प्रवृत्तकरण के होते हैं तो 8 समय अपूर्वकरण के होंगे और उसका भी अगर फिर से संख्यातवां भाग कर दिया दो से भाग करके तो चार समय अनिवृत्तिकरण के बनते हैं। यानि जो समय अनिवृत्तिकरण में 4 समय का है, वही समय अपूर्वकरण में अन्तर्मुहुर्त का 8 समय का है और अध:करण में वही 16 समय का और तीनों अन्तर्मुहुर्त ही है लेकिन तीनों के बीच में इतना difference है। तो ये अन्तर्मुहुर्त काल से ये तीनों के compare करना है उससे ऐसा समझ लेना। फिर यहाँ लिखा है असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम किसमें होते हैं? ये अध:करण में बताए गए हैं। असंख्यात लोक प्रमाण का मतलब होता है कि एक लोक (कौन सा लोक?) जो 343 घन राजू प्रमाण लोक होता है, इस लोक में जितने प्रदेश होते हैं, उतने प्रदेशों के बराबर तो एक लोक हुआ और उन्हीं प्रदेशों में ऐसे असंख्यात का और multiply करना है, ऐसे ही असंख्यात लोकों का, असंख्यात लोक में जितने प्रदेश है उनमें उसको और multiply करना है, तब जो असं-ख्यात संख्या आयेगी, उतने असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम अध:प्रवृत्त करण में होते हैं। यानि यह परिणाम अनेक जीवों की अपेक्षा से कहे जाते हैं। एक जीव के तो एक समय में एक ही परिणाम होता है। लेकिन नाना जीवों की अपेक्षा से अध:करण के कितने हो सकते हैं? तो वह असंख्यात लोक प्रमाण हो सकते हैं और जो ये लोकप्रमाण परिणाम हैं, यह भी जो उस अध:करण का जो अन्तर्मुहुर्त है उसमें प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहुर्त तक ये बढ़ते चढ़ते हुए परिणाम हैं। यानि इन परिणामों की संख्या भी बढ़ेगी और विशुद्धि भी बढ़ेगी। वह जो विशुद्धि बढ़ती है वह एक सदृश क्रम से बढ़ती है। यद्धा-तद्धा नहीं बढ़ती है। उस सदृश क्रम का मतलब है कि अगर वह वृद्धि एक successive order में बढ़ रही है यानि हम उसको किसी एक अनुपात में बढ़ा रहे हैं तो वह उसी अनुपात में उस गुणस्थान में बढ़ती हुई चली जाएगी। उसी को समझाने के लिए यहाँ पर अंकसंदृष्टि दी जाती है। उन परिणामों में सदृशता क्या कहलाती है और असदृशता क्या कहलाती है, उसको हम यहाँ समझ सकते हैं। इसको जिए तरीके से शास्त्रों में

समझाया है, उसी अंक संदृष्टि की अपेक्षा से समझने के लिए मान लें जितने भी सभी प्रकार के परिणाम हैं जो हमने असंख्यात लोक प्रमाण बताये हैं वो 3072 हैं। ये अध:प्रवृत्तकरण के सभी परिणामों की संख्या है। और समय है 16। अब इसी अंक को (3072) 16 समयों में बाँटना है। और एक निश्चित सदृश चय के हिसाब से बाँटना है। यानि प्रथम समय में परिणाम लेते हैं 162। इन सबको निकालने के गणित सूत्र रहते हैं जो आपको अभी नहीं बता रहे हैं। सीधा-साधा, मोटा-मोटा सीख लें। सूक्ष्म बाद में सीखना। अब पहले समय के परिणाम 162 आये तो दूसरे समय के परिणाम आयेंगे 166, तीसरे का 170, चौथे 176, एक successive order में बढ़ते चले जा रहे हैं। चार-चार के अंक से बढ़ रहे हैं। इस चार को ही चह कहते हैं। अब आप इसको 16 तक बढ़ाते चले जाएं, जब आप 16 तक बढ़ा लेंगे तो 16 पर आ जाएगा 222। अब पहले समय के परिणाम है 162 जिन्हें हम कुछ खण्डों में विभाजित करेंगे। एक खण्ड में परिणाम आए 1-39 तक, दूसरे में 40-79 तक, तीसरे में 80-120 तक, फिर 121-162 तक। 162 परिणाम के चार खण्ड में लिख दिया। ऐसे ही हमको दूसरे समय के भी चार खण्ड बनाने हैं। 40-79, 80-120, 121-162, 163-205। तीसरे समय के परिणाम 80-120, 121-162, 163-205, 206-249, चौथे समय के परिणाम 121-162, 163-205, 206-249, 250-294। अभी हमने केवल चार समय के परिणाम बनाए। पहले समय के 162 परिणाम हैं। इन 162 परिणामों में जो 1-39 तक के परिणाम हैं ये आपको कहीं पर भी match करते हुए नहीं मिलेंगे। ये परिणाम बिल्कुल अलग हैं। 40-79 तक के परिणाम पहले समय के प्रथम खण्ड में भी हैं और दूसरे खण्ड में भी। इसी तरह 80-120, 121-162 वाले भी दोनों खण्ड में हैं। केवल 163-205 वाले परिणाम इन दोनों में नहीं है लेकिन ये परिणाम जब दूसरे समय परिणाम होंगे उसमें match करेंगे। यानि दूसरे समय के जो परिणाम होंगे, पहले समय के परिणाम 162 हो गए, दूसरे समय के परिणाम बढ़ते चले जायेंगे। दूसरे समय के परिणाम हो गये 166। इसके भी हम ऐसे ही चार खण्ड करेंगे। तो उसमें भी इसी तरह से आएगा। ये परिणाम आयेंगे 40-79, 80-120, 121-162, 163-205। ये दूसरे समय के परिणाम हो गए। 80-120, 121-162,

163-205, 206-249 ये तीसरे समय के परिणाम हो गये। 121-162, 163-205, 206-249, 250-294 ये चौथे समय के परिणााम हो गये। तो कोई भी जीव जब भी कभी अध:प्रवृत्तकरण नाम के परिणाम को प्राप्त करेगा तो सबसे पहले उसे जो परिणाम मिलेंगे, जो परिणाम उसके अन्दर आयेंगे वे इन्हीं 1 से लेकर 162 तक के परिणाम होंगे। यानि अनादिकाल से अनन्तकाल तक तीन लोक में कहीं पर भी कोई भी अध:प्रवृत्तकरण नाम का परिणाम जब भी करेगा तो उसके लिए सबसे पहले जो परिणाम मिलेंगे वे 1-162 तक के परिणाम होंगे पहले समय में। दूसरे समय में जो परिणाम होंगे वे 40 से लेकर 205 तक के परिणाम होंगे। तो पहले और दूसरे समय के परिणाम जब हम देखते हैं तो उपरिम समय के (बढ़ा हुआ समय यानि दूसरा समय) परिणाम निचले वाले समय (पहला समय) के परिणामों से match कर रहे हैं। सद्दश परिणाम हो गए। तो ये जो परिणामों की सद्दयशता है इसलिये इसको अध:प्रवृत्तकरण कहा जाता है। अब जो ये 1-39 तक के परिणाम हैं ये केवल असद्दश परिणाम हैं। बाकी के सब परिणाम उसके match कर रहे हैं। यानि प्रथम समय में जो भी जीव अध:करण को प्राप्त होगा तो उसके परिणामों की संख्या और विशुद्धि यही रहेगी पहले खण्ड वाली, दूसरे समय की दूसरे खण्ड वाली, तीसरे समय की तीसरे खण्ड वाली और चौथे समय की चौथे खण्ड वाली ही रहेगी। और ये सभी परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। ये परिणाम ऊपर-ऊपर बढ़ते चले जा रहे हैं। पहले समय के 162 हैं, दूसरे के 166, तीसरे के 170, चौथे के 174 और बढ़ते-बढ़ते 16th समय के 222 हो जायेंगे, ये सभी अध:प्रवृत्तकरण के परिणाम हैं। इससे हमने जाना कि ये जो परिणामों की एक रचना बन रही है इसे बोलते हैं अनुकृष्टि रचना। अनुकृष्टि का मतलब हो गया- ऊपर के समय के परिणाम नीचे के समय के परिणामों से match कर रहे हैं। कोई भी जीव अगर प्रथम समय में अध:प्रवृत्तकरण को प्राप्त होता है तो वह इन प्रकार के परिणामों में से कोई भी परिणाम प्राप्त करेगा। अब हुआ क्या? अगर वही जीव दूसरे समय में पहुँच गया और इसके बाद कोई और जीव प्रथम समय में पहुँच गया तो उन दोनों के परिणाम एक समान मिल रहे हैं इसी के कारण अध:करण परिणामों को अध:प्रवत्त संज्ञा दी गयी है। यानि अभी ये परिणाम इतनी high quality के नहीं है

कि अगले समय वाला इनको प्राप्त न कर सके। यानि आप आगे बढ़ भी गए तो भी एक समय बाद कोई आया तो भी वो आपकी matching कर रहा है। माना चार लोगों ने एक साथ दौड़ना शुरू किया। वो चार लोग दौड़ लगा कर आगे निकल गए। फिर चार लोगों की दूसरी टुकड़ी आयी दौड लगाने के लिए और उन्होनें तुरन्त आगे वाली पहली टुकड़ी के लोगों को पकड लिया। तो इसका मतलब है कि आपकी दौडने की quality अभी highest नहीं है। इसी के कारण से इसका नाम है अध:प्रवृत्तकरण। ये अध:प्रवृत्तकरण का स्वरूप है। जब इस तरह से सदृश वृद्धि होते हुए ये सभी परिणाम प्राप्त हो जाते है तब इसमें ये अनुकृष्टि रचना बनाई जाती है और उसके माध्यम से ये बताया जाता है कि ये अनुकृष्टि रचना के कारण से ही इन परिणामों में नीचे के परिणामों से समानता आ रही है और यही सदृशता होने के कारण से अध:करण इसका नाम पडा है। अध:प्रवृत्त करण की परिभाषा क्या बन गयी? नाना जीवों की अपेक्षा से जब उपरिम समय के जीवों के भाव या परिणाम जब निचले समय वाले जीवों के परिणामों के सदृश हो जाते हैं तो उसे अध:प्रवृत्तकरण करते हैं। यही गाथा 48 में लिखा है। **'जह्मा उवरिमभावा, हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति।'** उपरिम के भाव निचले भाव से सदृश हो गये इसलिये इसका नाम हो गया अध:प्रवृत्तकरण। ये अध:करण का स्वरूप समझने के बाद में तब हम अपूर्वकरण की ओर बढ़ेगे। अब अपूर्वकरण में क्या कहते हैं?

अपुर्वकरण–

अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तं।
पडिसमयं सुज्झंतो, अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥50॥

'अंतोमुहुत्तकालं गमिऊण' इस अध:करण में अन्तर्मुहुर्त काल निकाल कर के **'पडिसमयं सुज्झंतो'** प्रति समय विशुद्धि को प्राप्त हो रहा है। प्रति समय अनन्तगुणी, अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ती है, यानि हम इस गुणस्थान में होने वाले कार्य देखें, यदि अध:प्रवृत्तकरण में होने वाले कार्य देखें तो इसमें चार काम होते हैं। पहला काम प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धि का बढ़ना, दूसरा काम होता है, जिसे हम अशुभ कर्म या अप्रशस्त प्रकृतियां

कहते हैं, उन सबकी अनुभाग शक्ति घटती चली जाती है। और इतनी घटती है, एक बार आपको बताया था, द्विस्थानी, एकस्थानी, त्रिस्थानी, चतुस्था-नी, जो उदाहरण दिया था उसके लिए नीम, कांजीर, विष और हलाहल का यानि कि अगर अप्रशस्त प्रकृतियों में हलाहल वाली शक्ति पडी होगी, विष वाली शक्ति होगी तो वह घट के द्विस्थानी हो जायेगी, वह नीम और कांजीर जितनी रह जायेगी। यानि ये काम इस विशुद्धि के माध्यम से इतना हो जाता है कि अप्रशस्त प्रकृतियों की अनुभाग शक्ति घटकर के द्विस्थानी हो जाती है और प्रशस्त प्रकृतियों की अनुभाग शक्ति बढ़ कर चतु:स्थानी हो जाती है। प्रशस्त प्रकृतियाँ जो शुभ कर्म हैं, शुभ प्रकृतियाँ हैं वो उस समय विशुद्धि के माध्यम से चतुस्थानी (गुड़, खांड, शर्करा, अमृत) माने वो अमृत तुल्य उसमें रस पड़ जायेगा उस विशुद्धि के माध्यम से। जब हम विशुद्ध बनायेंगे तो उसके लिए अपने भीतर परिणामों की विशुद्धि चाहिए पड़ती है। लोग पूछेंगे ये सब गणित पढ़ने से, ये जीवकाण्ड पढ़ने से हमें क्या मिल रहा है, इसके पढ़ने से हमारे परिणामों में हमें क्या मिल रहा है? आपके परिणामों में ये विश्वास आयेगा कि कर्मों के अन्दर भी अंतर अगर हम डाल सकते हैं तो अपने पुरूषार्थ से डाल सकते हैं। कर्म की अशुभता, अप्रशस्ता को भी हम अपनी विशुद्धि के माध्यम से नष्ट कर सकते हैं। अपने अन्दर अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में परिवर्तित कर सकते हैं, शुभ कर्म की शक्ति को बढ़ा सकते हैं, उस विशुद्धि के माध्यम से कर सकते हैं। आप अपनी विशुद्धि बढ़ाओ। संक्लेश करोगे तो अप्रशस्त कर्मों की शक्ति बढ़ेगी और प्रशस्त कर्मों की घटेगी और विशुद्धि बढ़ाओगे तो अप्रशस्त कर्मों की शक्ति घटेगी, प्रशस्त कर्मों की शक्ति बढ़ेगी। आपको अच्छे-अच्छे फल, भीतर से आपको सुख ही सुख मिलेगा। अमृत जैसा सुख चाहते हो तो परिणामों की विशुद्धि बढ़ाओ। अब ये अध:करण और अपूर्वकरण के परिणाम सातवें और आठवें में ही होते हो ऐसा नहीं है। ये तो निचले गुणस्थानामें में भी होते हैं। उसी विशुद्धि के कारण से तो एक मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। उसी के कारण से जीव अनन्तानुबन्धी की विसंयोजन करता है, दर्शन आदि मोहनीय कर्मों का उपशम करता है और ये विशुद्धि हम जितनी भी बढ़ायेंगे बढ़ती चली जाती है। ये तो वो विशुद्धि हैं जिसमें हमें स्थाई रूप से ये परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। इसके माध्यम से बहुत बडे-बडे परिवर्तन

देखने को मिलते हैं। तो ये परिवर्तन हो गए। एक तो अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ना, दूसरा अप्रशस्त प्रकृतियों की अनुभाग शक्ति द्विस्थानी आ जाना, प्रशस्त प्रकृतियों की अनुभाग शक्ति चतु:स्थानी होना। स्थितिबंधापसरण कहा जाता है, माने उसकी स्थितियों का घटना। ये तो अनुभाग की बात हो गयी। तो स्थिति और अनुभाग- ये दो प्रकार के बंध हैं। दोनों ही प्रकार के बंधों में अंतर पड़ता है तब कर्म के अन्दर कुछ अन्तर आता है। तो स्थिति में जो घटना होता है उसे बोलते हैं स्थितिबंधापसरण और जब ये स्थिति बंधापसरण होते होते जब ये स्थिति को ही बिल्कुल हम तोड़ दे तब उस को बोलते हैं स्थिति काण्डक घात या स्थिति खंडन। तो ये स्थिति काण्डक घात बड़ी चीज है। वो शुरू होगा अपूर्वकरण से और अध:प्रवृत्तकरण में स्थिति बंधापसरण होता रहता है। माने पहले हम किसी की स्थिति की धीरे-धीरे ही तो तोडेंगे। कोई भी पत्थर के अगर हम टुकड़े करना चाहते हैं तो पहले उसको धीरे-धीरे खरोंच ही तो करेंगे। धीरे-धीरे खरोंचते-खरोंचते, जितना उसके ऊपर से बढ़ाते जायेंगे, फिर एक स्थिति ऐसी आयेगी कि एक हथौड़ा मारेंगे और उसके दो टुकड़े हो जायेंगे। तो दो टुकड़े होने का मतलब तो स्थिति कण्डक घात हो गया। ये काण्डक घात कहलाता है। ये शब्द अब समझ लो आप, आगे काम आयेंगे। अनुभाग काण्डक घात, स्थिति काण्डक घात, ये बडी चीज है और वैसे जो घट रहा है वह स्थिति घट रही है। तो ये ही काम अध:प्रवृत्तकरण में होता है, अपूर्वकरण में गुणश्रेणी निर्जरा शुरू हो जाती है, गुण संक्रमण शुरू हो जाता है, स्थिति काण्डक घात शुरू हो जाते हैं, अनुभाग काण्डक घात शुरू हो जाता है, ये अपूर्वकरण में होना शुरू हो जाता है। यानि इस अपूर्वकरण की विशुद्धि से वह जीव अपने अन्दर और अनेक प्रकार की कर्मों के साथ होने वाली जो प्रक्रियाएँ हैं ये सब उसके अन्दर आने लग जाती है। जब ये जीव अध:प्रवृत्तकरण में इतनी विशुद्धि बढ़ा लेता है तब जाकर के वह अपूर्वकरण की विशुद्धि में पहुंचता है। direct अपूर्वकरण की विशुद्धि नहीं मिल जायेगी, ये एक प्रक्रिया है। इसी से गुजरेगा। तो अपनी विशुद्धि को बढ़ाते-बढ़ाते वह अपूर्वकरण गुण-स्थान को प्राप्त हो जाता है। फिर यहाँ क्या कहते हैं।

एदम्हि गुणट्ठाणे, विसरिससमयट्ठियेहिं जीवेहिं।
पुव्वमपत्ता जह्मा, होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥51॥

'एदम्हि गुणट्ठाणे' इस गुणस्थान में। कौन से गुणस्थान में 'अपूर्वकरण में' क्या होता है? **'विसरिससमय में, 'ट्ठियेहिं'** माने स्थित, **'जीवेहिं'** जीवों के द्वारा, **'पुव्वमपत्ता'** पूर्व में जो कभी प्राप्त नहीं हुए, ऐसे परिणाम उस के अन्दर **'जह्मा'** माने चूंकि आ जाते हैं इसलिये उस गुणस्थान का नाम **'अपुव्वा हु परिणामा'** अपूर्व परिणाम कहा जाता है। अपूर्व का मतलब ऐसे परिणाम जो उसे पहले प्राप्त नहीं हुए। अब इस परिणाम में अन्तर आपको स्पष्ट समझ में आयेगा। यहाँ पर जो परिणाम पहले समय में प्राप्त हुए, दूसरे, तीसरे, चौथे समय पर भी वही मिल रहे हैं। चौथे समय के बाद वे परिणाम छूट जायेंगे। पांचवे समय से नये परिणाम शुरू हो जायेंगे लेकिन चार समय तक तो वही परिणाम belong किये। लेकिन अपूर्वकरण में एक समय के परिणाम दूसरे समय के परिणाम से नहीं मिलेंगे। जो जीव एक समय से दूसरे समय में पहुंच गया, दूसरे समय में अपूर्वकरण के समय में पहुंच गया, असंख्यात लोक प्रमाण परिणामों को प्राप्त कर लिया, अन्तर्मुहुर्त में भी वो अपने दो-चार समय आगे पहुँच गया और फिर कोई अपूर्वकरण में enter किया दो समय बाद, तो अब उसके परिणाम जो दो समय पहले चला गया उससे match नहीं कर पायेगा। हर समय के उसके परिणाम इतने अलग-अलग होंगे कि वो पिछले समय से match नहीं करेंगे। इसलिये उसको अपूर्व परिणाम कहा जाता है। विशुद्धि तो अध:करण की भी अपूर्व-अपूर्व है, लेकिन परिणाम उसके पिछले वाले परिणामों से मिलते हैं। लेकिन अपूर्वकरण में विशुद्धि अनन्त गुणी अलग-अलग होते हुए भी उसके जो परिणाम हैं वो पिछले वाले जीव के परिणाम से मिल नहीं सकते। मतलब ये हो गया कि वह परिणाम भिन्न समय में जो स्थित है **'विसरिससमयट्ठियेहिं जीवेहिं'** का मतलब जो भिन्न जो भिन्न समय में स्थित जीव है जो पहले अपूर्वकरण परिणाम को प्राप्त कर चुका है और जिसने बाद में अपूर्वकरण परिणाम को प्राप्त किया है, तो वह अपूर्वकरण के परिणाम उससे मिल नहीं पायेंगे जैसे कि अध:करण में मिल जाते ये। इसलिये इस गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है। अपूर्व-अपूर्व का मतलब जो पहले प्राप्त नहीं किये थे वहीं प्राप्त कर रहा है। अगर वो अपने दूसरे समय में पहुँच गया, उसमें आठ समय हैं। इस अंक संदृष्टि के अनुसार उसमें 16 समय थे, इसमें आठ समय हैं। माने पहले समय में

जो परिणाम उसने प्राप्त कर लिये वो फिर जो दूसरे समय में जो परिणाम प्राप्त किये तो उसमें पहले समय का कोई परिणाम नहीं है। तीसरे समय में और अपूर्व, चौथे समय में और अपूर्व, पांचवे, छठवें, सातवें, आठवें समय में और और और अपूर्व परिणाम माने जो पिछले समय में, पूर्व में परिणाम नहीं थे उसका नाम है अपूर्व। इसको बोलते हैं अपूर्वकरण, विशुद्धि इतनी बढ़ती चली जाये कि पिछले वाला आपको पकड ही न पाये। इससे कितनी अच्छी सीख मिलती है हमको। आपको आगे बढ़ना है, तरक्की करना है, अपनी तरक्की इस तरह से बढ़ाओ कि पीछे वाला आपकी कितनी भी टांग खींचे, पीछे वाला तुम्हारे साथ कितना भी compare करे, वह तुमसे compare कर ही नहीं पाये तुम इतना आगे निकलते जाओ। इन परिणामों से practically क्या सीखो? जब तक आप अध:करण के परिणामों में रहोगे, सामने वाला आपको कहीं न कहीं मिलेगा, आपके परिणाम match होंगे, आपको अपनी तरफ खींचेगा। सामान्य बात है। आप इससे ऊपर उठो। आप उसमें उलझोगे तो वहीं के वहीं रह जाओगे और अपूर्व करण परिणामों की तरफ निकल गये फिर वो तुम से match नहीं कर पायेगा। कोई भी खिलाड़ी होता है, कोई भी दौड़ होती है तो ये नहीं देखा जाता कि पीछे वाला मुझे पकड रहा है या नहीं। यदि पीछे वाले पर दिमाग चला गया तो आप आगे नहीं बढ़ पाओगे। आप आगे बढो, आप आगे दौडो, अपनी क्षमता आप आगे दौड़ने में लगाओ। अगर आप आगे दौड़ने में निकलते चले गये तो पीछे वाला आपको अगर पकड़ न पाये तो बस आपके परिणाम अपूर्व हैं। जो आपके बाद में आया, आपके पीछे आया, आप उससे पहले दौड़े थे और उसने आपको पकड़ लिया, आप भी दौड़ रहे थे, वो भी दौड़ रहा है, आपकी दौड़ में अभी कोई कमी है। दौड़ तो रहे हो लेकिन वो energy नहीं है। वो है अध:प्रवृत्तकरण अगर पीछे वाले ने पकड लिया। जब भी कभी ये मेराथन दौड़ होती है, उसमें एक-एक सैकेन्ड के step count किये जाते हैं। Last target पर जब कोई धावक वहां पहुंचने वाला होता है, उसके steps के records के fraction भी देखे जाते हैं। कितनी speed पर किसने कहां पर पैर रखा और किसने goal-achieve कर लिया। तो बस ये वही खेल है। अभी तो एक और है आगे का। अनिवृत्तिकरण। अभी तो अपूर्वकरण है इसमें अभी दौड़ इतनी आगे

की बढ़ाते चले जाओ कि वह पिछले वाला तो आपको पकड ही न सके। इस तरीके के परिणामों का नाम हो गया अपूर्वकरण परिणाम। इसलिये यहाँ पर अन्त में अपूर्वकरण के विषय में एक और गाथा से बताया जा रहा है।

भिण्णसमयट्ठियेहिं दु, जीवेहिं ण होदि सव्वदा सरिसो।
करणेहिं एक्कसमयट्ठियेहिं सरिसो विसरिसो वा ॥ 52॥

भिन्न समय में जो स्थित जीवों के परिणाम कभी सदृश नहीं होते हैं। लेकिन एक समय में स्थित जीवों के परिणाम सदृश भी हो सकते हैं और विसदृश भी हो सकते हैं। यह अभी अपूर्वकरण की ही विशेषता आपको बतायी जा रही है। यानि समान समय में स्थित, एक ही समय में स्थित। यहाँ चर्चा जीवकाण्ड की गाथाओं का आधार बनाकर कर रहे हैं। प्रथमोपशम सम्य-ग्दर्शन के समय भी अपूर्वकरण होता है, लेकिन विशेषता से समझने के लिए अष्टम आदि गुणस्थान की चर्चा करते हैं।

अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा।
कमउड्ढा पुव्वगुणे, अणुकट्टी णत्थि णियमेण ॥ 53॥

तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं।
मोहस्सपुव्वकरणा, खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥54॥

'तारिसपरिणामट्ठियजीवा' जो हमने गाथा 53, 52 में अपूर्वकरण का स्वरुप बताया है उस प्रकार के परिणामों में स्थित रहने वाले जो जीव हैं, ये ही जीव **'मोहस्सपुव्वकरणा'** ये मोह के अपूर्व-अपूर्व परिणामों को करने वाले हैं यानि मोह के साथ में इनका जो घात होता है, इन परिणामों के माध्यम से जो मोह का घात होता है और उससे इनको जो अनन्तगुणी विशुद्धि का जो एक आनन्द आता है, अपूर्व-अपूर्व विशुद्धि का जो आनन्द आता है, वह आनन्द केवल इन्हीं जीवों को मिलेगा और किन्हीं को नहीं। अब ये आनन्द किसने देखा? **'जिणेहिं गलियतिमिरेहिं'** जो कहेंगे, वही बतायेंगे, वही अनुभूत किये होंगे और इतनी सूक्ष्म अनुभूतियों की बातें हमें वही बता सकते हैं जिनका सारा तिमिर और ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि

कर्मों के क्षय हो चुके हैं। इसलिये वो जिनेन्द्र भगवान जिनका तिमिर गल गया है, जिनके अन्दर अज्ञान का बिल्कुल भी अंधकार नहीं रह गया है, जो केवलज्ञान को प्राप्त हो चुके हैं, ऐसे केवलज्ञान को प्राप्त जिनेन्द्र भगवान के द्वारा हमें यह बात बतायी गयी है इसलिये हम इस बात पर श्रद्धा करते हुए और इस तरह के कार्य होते हैं, इस तरह की हमारी बुद्धि, आस्था के साथ में इस चीज को स्वीकार करेगी तभी हमें इन विवरणों के माध्यम से कुछ पता रहेगा कि आत्मा में भी ध्यान के माध्यम से कितने बड़े-बड़े कार्य घटित होते हैं। अन्यथा आपको तो ध्यान के नाम पर सिर्फ इतना ही होगा कि आप ध्यान करने बैठोगे, आपके अन्दर विशुद्धि का अभाव होगा, किसी भी तरह का अपको ज्ञान नहीं होगा, आँख बंद करते ही आपको झपकी आयेगी, नींद के अलावा आपको कुछ नहीं होगा। करें क्या महाराज बैठकर के? तो इसलिये तत्वार्थसूत्र में बताया था **'शुक्लेचाद्ये पूर्वविदः'** ये सब शुक्ल ध्यान है कि नहीं? यदि अपूर्वकरण गुणस्थान हो रहा है, आठवां गु-णस्थान है, शुक्ल ध्यान है, ये किनको होगा? पूर्वविदों का जिनको ज्ञान होता है, श्रुतकेवली सदृश जो हो जाते हैं, वो अपने ज्ञान में भीतर से इतने सजग, अपने चिन्तन में, उस विचार में इतने लीन रहते हैं कि निद्रा उनके आ नहीं सकती। अब इसी गुणस्थान में वो निद्रा आदि सबका क्षय भी, उनके बंध आदि का विनाश भी होने लग जाता है। तो इस तरीके से इस गुणस्थान में होने वाले जो कार्य है हमें यहाँ पर ये बताते हैं कि वह जीव अपने आत्मा की विशुद्धि के साथ कितना जुड़ा हुआ है और इस विशुद्धि के साथ जो कार्य हो रहे हैं वो बाहर किसी को दिखायी नहीं देंगे, वे केवल केवली भगवान देखेंगे। जिनके अन्दर केवलज्ञान है वहीं देखेंगे कि ये देखो, ये आत्मा के अन्दर अपूर्व परिणाम कर रहा है। इस अपूर्वकरण परिणामों के माध्यम से क्या कर रहा है? 'खवणुवसमणुज्जया' क्षपण और उपशमन में उद्यत हो गया है। उद्यत (उज्जया) मतलब उसमें बिल्कुल प्रयत्नशील हो गया है, तत्पर हो गया है, उसी में उसका effort जुड़ा हुआ है। बाहर से आपको कुछ नहीं दिखेगा, लेकिन अन्दर से उसका कितना effort चल रहा है, उद्यत है वो, सो नहीं रहा है। सब अपने आप हो जायेगा, काललब्धि आयेगी हो जायेगा, न अनादिकाल में हुआ न कभी होगा। ऐसे काललब्धि के भरोसे बैठे रहने वाले जीव निगोद की ही यात्रा करेंगे। काल लब्धि के

भरोसे अपूर्वकरण आदि गुणस्थान प्राप्त करने की योग्यता कभी प्राप्त नहीं कर सकते। ये इतना भीतर से आप सोचें, जो लोग इतनी अध्यात्म की चर्चाएं करते हैं, काललब्धि आदि की चर्चाएं करते हैं, उन्हें कभी आत्मध्यान नहीं होता है। आत्मज्ञान की बातें करने वाले लोग भी आत्मध्यान में पांच मिनट बैठ नहीं पाते हैं। क्यों नहीं? क्योंकि हमारे अन्दर अंधकार है। ये लिखा है न 'तिमिर', जिन्होने तिमिर गला दिया, तिमिर गलेगा तो भीतर कुछ दिखेगा। और भीतर अगर कुछ नहीं दिख रहा है तो भीतर जो अंधकार है वो अंधकार हमें सहन नहीं होता, तो सब दरवाजें बन्द हो गये, इन्द्रियों की सब खिड़कियां बंद हो गयी, तो मन घबरा जाता है, अंधकार भीतर है कर्मों का, अज्ञान का, बड़े-बड़े कर्मों की अनुभाग शक्तियां अपना फल दे रही है, बड़ी-बड़ी कषायों की अनुभाग शक्ति का हम रस पी रहे हैं। उस अंधकार के कारण से हमें बाहर से एकदम से निकलना पड़ता है। घबराहट होने लग जाती है, मन भीतर बैठ नहीं पाता है, और बैठ भी गया तो निद्रा देवी के सहारे बैठ सकता है, जागृति के सहारे नहीं बैठ सकता। **'गलियतिमिरेहिं'** इसलिये यहां पर ये शब्द डाला गया है। अंधकार जिन्होने गला दिया, यानि अगर हम आत्मध्यान में भीतर अपने आप को बिल्कुल प्रकाशमान नहीं महसूस करें, भीतर से अपने आप को जागृत, अपने अंदर चित्त-चमत्कार की संवेदना की ऊर्जा महसूस न हो तो समझना हमारे अन्दर अभी कषायों का अंधकार हमें घेरे हुए है और इसके कारण से हमें भीतर कुछ भी दिख नहीं रहा है। इसलिये हम बहुत देर तक आंख बंद करके बैठ नहीं पाते हैं। ये सिद्धान्त है। इसलिये इस सिद्धान्त के माध्यम से यहां कहा जा रहा है, जो क्षपण और उपशम में उद्यत हो गये हैं वो यही जीव कहलायेंगे जो अपूर्वक-रण के परिणामों को प्राप्त हो गये। अब ये उद्यत हो गया। माने अब ये कर्मों का उपशमन करेगा। अभी कर्मों का उपशमन हुआ नहीं, कोई क्षय हुआ नहीं। जो भी कर्मों के उपशम और क्षय हुए थे वो सप्तम गुणस्थान में किये गये थे। द्वितीयोपशम या कोई भी क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि की क्रिया वो सब पहले हो चुकी। श्रेणी चढ़ने के बाद में अष्टम गुणस्थान में अभी किसी भी कर्म का उपशमन नहीं हो रहा है अन्तर्मुहुर्त काल तक लेकिन उपशमन की प्रक्रिया चल रही है। उपशम होने का नाम है कि वो उपशमित हो जाए। वो होने में अभी time लगेगा। अनिवृत्तिकरण का परिणाम आएगा अभी,

उसमें जाकर के बहुत सारा काम होगा और अपूर्वकरण में क्या-क्या हो रहा है। वो आपको कुछ बता दिया गया है। चार कार्य थे वो, और कुछ जो आगे होने वाला है वो भी आपको आगे बताया जायेगा। क्या काम है? जो यहाँ पर अपूर्वकरण के परिणामों में ही होगा और जो क्षपण और उपशम में उद्यत हुआ है उसी जीव के साथ होगा। अब यहाँ पर क्षपणा का मतलब क्या है? जो चारित्र मोहनीय की 21 प्रकृतियों का क्षय करने के लिए कमर कसे हुए हैं। उसको बोलेंगे क्षपक, क्षपणा करने में उद्यत। इस तरीके की प्रक्रिया में जो लग जायेगा वह कहलायेगा क्षपक श्रेणी वाला जीव। और जो इसी अपूर्वकरण परिणाम में रहते हुए चारित्र मोहनीय की उन्हीं 21 प्रकृतियों का उपशमन करेगा तो उपशामक जीव कहलायेगा। अब देखो, काम दो हैं, एक कर्मों का उपशमन कर रहा है और एक कर्मों का क्षय करने के लिए उद्यत हो रहा है लेकिन न तो अभी किसी कर्मों का क्षय हुआ, न ही अभी उपशमन हो रहा है। सिर्फ प्रक्रिया शुरू हुई है। ये कैसे पता पड़ेगा कि ये कर्म का उपशामक है या क्षपक है। जब ये आगे के समयों में पहुंचेगा, इसका जो result दिखाई देगा तब वो result बताएगा कि ये क्या करते हुए यहाँ तक आया है। कार्य होने के बाद में कारण का जब पता चलेगा तब कहा जाएगा अच्छा, ये 11वें गुणस्थान में उपशांत भाव में आ गया । सब कर्मों का उपशमन करके ये यहाँ पर पहुँचा। इसका मतलब ये था कि अपूर्वकरणा के परिणामों से इसने कर्मों का उपशमन करना प्रारम्भ कर दिया था, क्षय करना प्रारम्भ नहीं किया था। बहुत से लोग तो उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी को ऐसे समझते हैं कि जैसे कोई track बने हुए हो। जैसे railway track होते हैं। अरे ये तो उपशम श्रेणी पर चढ़ गए। चढ़ना तो है लेकिन समझाने के लिए। चढ़ गया लेकिन चढ़ना मतलब ऐसा नहीं कि train में या plane में चढ़ गया, कि कोई track बने हुए है कि इधर क्यों नहीं गया, उधर क्यों चला गया। ऐसा कुछ नहीं है। ये तो सिर्फ भीतर की, अंतरंग की कर्मों के साथ होने वाली घटना, हमारे विशुद्धि परिणाम एक समान होते हुए भी किधर ले जाए पता नहीं। परिणाम तो वही अपूर्वकरण के हैं दोनों (उपशामक और क्षपक जीव के), तो फिर आपने उसको अपूर्वकरण के ही परिणाम क्यों कह दिया? कुछ तो अन्तर रहना चाहिए था। तो अन्तर इस बात से आयेगा कि वह कर्मों का उपशमन कर रहा है कि क्षय

कर रहा है। अगर कर्मों का उपशमन कर रहा है तो अपूर्वकरण उपशामक और अगर कर्मों का क्षय कर रहा है तो अपूर्वकरण क्षपक ये कहने में आयेगा। परिणाम एक ही है अपूर्वकरण का, लेकिन उस परिणाम के द्वारा होने वाले कार्य अलग-अलग हैं। और कार्य होने के बाद में पता पड़ेगा कि कारण क्या था। इसलिये कारण में कार्य का उपचार करके यानि कि कार्य जो आगे होने वाला है उस कार्य को देखते हुए पहले से ही उस कारण को वो कह देना जो आगे होने वाला है। कारण में कार्य का उपचार कहलाता है। जैसे कि कोई भी व्यक्ति जो राजा है उसके बेटे को भी राजा कहना, अभी राजा बनकर तो सिंहासन पर बैठा नहीं, लेकिन राजा होगा तो कौन होगा। इसके बाद इसका उत्तरदायित्व कौन लेगा। कौन उसके बाद सिंहासन पर बैठेगा? तो राजा का बेटा राजा कहलाता है क्योंकि राजा के जाने के बाद में यही राजा होगा। जब होगा तब होगा लेकिन पहले से ही उसको राजा कहना ये कारण में ही कार्य होने के कारण से ही यहाँ अष्टम गुणस्थान में उसको उपशमन करने वाला, क्षपक करने वाला, ऐसा कहना उपचार से है। अभी उपशमन करेगा, करा नहीं है, पर करेगा तो यही करेगा, यही उत्तरा-धिकारी है। कौन? जो भावों की क्रिया है, उस भावों की क्रिया को देखने वाले भी तो वही होंगे जो उन भावों को कर चुके हों और उन भावों को देख रहे हों साक्षात्। तो जो भावों को साक्षात् देख रहे हैं वही तो जानेंगे कि वे अपने परिणामों में किस तरह से कर्मों का उपशमन कर रहा है या क्षय कर रहा है। परिणाम तो एक ही है इसलिए उसको अपूर्वकरण ही कहा जायेगा। नाम उसके कर्मों की जो कार्यप्रणाली है उसके अनुसार अलग-अलग दे दिया जायेगा। लेकिन वह नाम अपूर्वकरण है तो अपूर्वकरण ही है। और अपूर्वकरण में जो लक्षण है विशुद्धि के जो भी कार्य है, वो सब कार्य ज्यों के त्यों होंगे। वो उपशमक के लिए भी होंगे क्षपक के लिए भी होंगे। तो इस तरह जब वे कार्य होते चले जाते हैं तो उस स्थिति में इसकी उपशमक या क्षपक इस तरह से नाम मिल जाता है, ये नाम जिनेन्द्र भगवान ने 'भणिया' कहा है। हम तो बस उनका कहा हुआ सुन रहे हैं। हमें तो पता ही नहीं है कि भगवान भी कुछ कहते हैं। यहाँ पर इन सिद्धान्त ग्रन्थों को पढ़ने से इतना तो दिखता है कि साक्षात् भगवान ने ये कहा है। भगवान ने ही कहा है तो भगवान की कही हुई बात को हम सुन रहे हैं तो ये हमारे लिए सौभाग्य की

बात है। ये भगवान ने ही कहा है और कोई कह ही नहीं सकता है। सूक्ष्म बातों की जानकारी और किसी को हो ही नहीं सकती। अध:प्रवृत्तकरण परिणाम में जो एक धावक का उदाहरण दिया था कि पिछले समय वाला जीव और अगले समय वाला जीव जो दौड़ रहा है, पिछले समय वाले जीव ने उसे पकड लिया। वहाँ पर भी group बनाए थे। group क्यों बनाये थे? परिणामों की संख्या बहुत सारी है। अब मान लो एक group आगे निकला है, एक group पीछे हैं, उसके पीछे एक और group है, एक और group है, ऐसे groups चल रहे हैं। ये एक सीमा तक तो दौड़ते-दौड़ते आगे-पीछे होते रहे, matching करते रहे। कुछ पीछे वाले आगे हो गये, आगे वाले पीछे हो गये, ये जब तक चलेगा ये कहलायेगा अध:करण। अब आया अपूर्वकरण। अपूर्वकरण में आगे-पीछे होने के बाद में जो group बन जायेगा पहले समय में, अब वो group जो दूसरे समय में चल रहा है, वो उसको कभी भी पकड नहीं पायेगा। वो पिछले समय वाला पीछे ही रहेगा। अब वो कितना ही दौड़ने की कोशिश में होगा, तो भी वो उसको catch नहीं करेगा। दूसरे समय के आगे वाले के साथ में जो तीसरा group चल रहा होगा, वो उसको नहीं पकड़ पाएगा। तो दूसरे समय वाले की विशुद्धि तीसरे समय वाले से कम और पहले समय वाले से अधिक है। और वो भी बहुत सारे लोग हैं लेकिन वो पहले समय वाले लोगों की विशुद्धि में अन्तर आता रहे, आगे-पीछे होते रहें वो, लेकिन वो पहले वाले दूसरे group में 456 लोग वो आपस में तो आगे-पीछे होते रहेंगे लेकिन वो जो आगे निकल गए हैं 472 की संख्या वाले उनको नहीं catch कर पायेंगे। तो ये जो बीच में difference बन गया तो ये quality का difference है। तो quality makes a difference आप कितनी भी किसी की नकल करने की कोशिश करो, matching करने की कोशिश करो, यदि आदमी में कोई quality होगी तो वो match करेगा नहीं। और एक ही काम में लगे हुए लोग तो हजारों होंगे लेकिन हर कोई अपनी-अपनी quality को belong करते हुए आगे चलेगा। खिलाड़ी होते हैं, पूरी team होती है, लेकिन man of the match का award हर किसी को नहीं मिलता। वहाँ पर जो वो अपना खेल दिखायेगा, उसके लिए ही उसे award दिया जाएगा। खिलाडी सब हैं, और सभी बहुतों को पीछे छोड़ कर

आए हैं, लेकिन वहाँ पर भी पहुँचने के बाद जो कर रहे हैं वो इस पर depend करेगा कि आप अग्रणी हैं कि नहीं हैं। बस ये ही खेल यहाँ पर है। अपूर्वकरण के परिणाम इतने विशुद्ध हैं कि वो अध:करण परिणाम वाले जीव तो आपस में घुलमिल रहे हैं लेकिन ये किसी से घुलमिल नहीं रहा है। ये जब आगे निकल गया तो अब आगे ही जा रहा है। अब इसको पीछे वाला पकड नहीं सकेगा। और जो पीछे वाले आपस में मिल रहे हैं, वो आपस में ही मिलेंगे। एक समय के साथ चल रहे हैं, उनमें तो सदृशता और विसदृ-शता दोनों होगी। लेकिन जो आगे-आगे हो गए, completely different रहेंगे वो। ये चीज दिमाग में रखकर के आपको जब अनिवृत्तिकरण में ले जाऊँगा तो आपकी समझ में आयेगा कि अपूर्वकरण से भी बढ़कर के अनिवृत्तिकरण में अब क्या होता है? उपशमन और क्षपण करने के लिए उद्यत इस जीवों के इस तरह के जो क्रिया कलाप हैं उन्हें हम व्यवहारिक रूप से भी समझे और अन्तरंग में सैद्धान्तिक रूप में भी समझें।

अनिवृत्तिकरण-

एकम्हि कालसमये, संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य, परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥56॥

'एकम्हि कालसमये' एक ही काल के समयों में, **'संठाणादीहिं'** संस्थान आदि के द्वारा **'जह णिवट्टंति'** जिस प्रकार से भेद प्राप्त होता है, **'ण णि-वट्टंति'** उस प्रकार के भेद इस प्रकार के परिणामों से यहाँ पर प्राप्त नहीं होता है। यह अनिवृत्तिकरण का स्वरूप है। अनिवृत्ति का मतलब होता है 'अ+निवृत्ति' अ माने अभाव, निवृत्ति माने भेद। जो तरह-तरह के अभी तक हमें परिणामों में भेद दिखाई दे रहे थे, उन भेदों का यहाँ पर अभाव हो गया। तो अनिवृत्ति का मतलब हो गया भेद नहीं होना। निवृत्ति माने भेद। किसी भी प्रकार परिणामों में होने वाला difference जो हमें अध:करण और अपूर्वकरण में समझ आ रहा था वो यहाँ अनिवृत्तिकरण में नहीं होता है। तो यहाँ पर उदाहरण देकर बताया गया जैसे संस्थान आदि। एक समय में मान लो बहुत सारे जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़ रहे हैं, उपशम श्रेणी में चढ़ रहे हैं, ध्यान कर रहे हैं, बहुत सारे मुनि महाराज बैठे हैं। उनके भी कोई न

कोई संस्थान, आकार है, colour हैं, और भी किसी तरीके का बाहरी रूप रंग है, वो कहीं न कहीं आपस में कुछ न कुछ different होता है, होगा ही। बाहर से सब कुछ different होते हुए भी जब वो अनिवृत्तिकरण के परिणाम में आ जायेंगे तो उनमें वहाँ पर कोई difference नहीं होगा। अभी तक हमें परिणाम कैसे दिखाई दे रहे थे? पुंज के पुंज। और उन पुंजों में आगे-पीछे के परिणामों में सदृशता-विसदृशता। अब यहाँ आचार्य कहते हैं कि इन परिणामों में किसी भी प्रकार की विसदृशता नहीं है। एक समय के जितने भी जीव वहाँ पर होंगे, हरेक समय में, उन एक-एक समय में रहने वाले एक-एक जीवों के परिणाम, जिस समय पर जो जीव होंगे, उनके उस समय पर उनके वैसे ही परिणाम होंगे। यानि काल की अपेक्षा से देखें, तो काल तो अध:करण से भी, अपूर्वकरण से भी और ज्यादा संख्यात गुणा हीन हो गया। काल, कम हो गया काल तो, समय तो अनिवृत्तिकरण का कम हो गया, परिणामों की संख्या देखें, तो वे असंख्यात लोक प्रमाण विशुद्धि परिणाम और ज्यादा बढ़े हुए हैं लेकिन वो परिणाम हरेक समय में बराबर हैं। यानि अध:करण में तो ऊपर-नीचे के परिणाम match कर रहे थे, अपूर्वकरण में एक समय के परिणाम भी mater नहीं कर रहे थे और अनिवृत्तिकरण में आयेंगे तो एक समय के परिणाम भी match उतने ही करेंगे और अलग-अलग समयों में जो जीव होंगे उनके परिणाम कभी match नहीं करेंगे। आपको जब अंकदृष्टि बताई थी तो अध:प्रवृत्तकरण में 16 समय लिए थे। अपूर्वकरण में 8 समय बने थे। अब अनिवृत्तिकरण से 4 समय बनेंगे। चार समय हैं तो चार ही परिणाम हैं। जितने समय उतने ही वहाँ पर परिणाम है। और उन परिणामों में रहने वाले अनेक जीव तो होंगे लेकिन उनके परिणाम एक समान होंगे। इसका नाम है अनिवृत्तिकरण गुणस्थान। पहले समय में जितने जीव होंगे सबके परिणाम एक समान होंगे। दूसरे समय में पहुंच गये तो तब उन सबके परिणाम एक समान, तीसरे समय में एक समान, चौथे समय में एक समान। अब यहाँ पर आकर बिल्कुल एक similarity बन गयी। अभी तक जो दौड़ रहे थे, पहले तो आगे-पीछे वालों से आगे-पीछे हो रहे थे, दौड़ते-दौड़ते जब आगे बढ़ गये कि इतने आगे बढ़ गये कि जो आगे हैं वे आगे ही हैं, जो पीछे हैं वो पीछे हैं, जो उसके और पीछे हैं वो पीछे हैं। इब इतना difference अपूर्वकरण

में आ गया था। वहाँ पर एक group में जो बहुत सारे चल रहे थे, वो भी आगे पीछे हो रहे थे। अब यहाँ अनिवृत्तिकरण में, दौड़ते-दौड़ते उस point तक पहुंच गये कि यहां पर वो सब जो आगे हैं वो तो आगे ही है लेकिन जो बराबर में हैं या जो वहां पहुंच गये तो वो जिस भी position में होंगे उसी position में रहेंगे। साथ वाले होंगे तो साथ ही रहेंगे, आगे-पीछे होंगे तो आगे-पीछे ही रहेंगे। अब वहां पर इतना time नहीं है या इतनी energy नहीं लग सकती है, कि कोई बगल वाले से आगे बढ़ जाये या आगे वाले को पकड ले। अब ये कुछ भी नहीं होगा। अब जैसे बड़ी-बड़ी मेराथन दौड़ होती है, उसमें जिस तरीके से point, step, second और सेकेंडों के fraction पर ध्यान दिया जाता है तो last में एक-एक step जहाँ पड़ रहा है, उस एक-एक step में वह धावक एक-एक second में कितना अपने goal को cover कर रहा है। ये वो स्थिति है। अनिवृत्ति-करण परिणाम यानि यहाँ पर एक-एक step की कीमत है और यहाँ पर सब बिल्कुल बराबर तरीके से ही चल पायेंगे। यहाँ पर अब कोई किसी को आगे-पीछे नहीं कर सकता। जो जहाँ पर है वो वहीं रहेगा इसका नाम है अनिवृत्तिकरण गुणस्थान। इसलिये यहाँ पर लिखा है कि बाहर की अपेक्षा से तो भिन्नता कुछ भी रहे, उनका कोई भी colour रहे, किसी भी age के हों, किसी की overage हो, कोई बिल्कुल early age का हो, कैसा भी किसी का संस्थान हो, ये सारे differences तब तक हैं जब तक वे नौवें गुणस्थान को प्राप्त नहीं कर लेते। एक बार नौवां गुणस्थान प्राप्त किया सब भीतर से एक समान परिणाम को धारण करने वाले हो जाते हैं। नौवें गुणस्थान में जितने समय, उतने ही परिणाम और सभी परिणाम उन जीवों के एक जैसे होंगे इसलिये उन जीवों को गुणस्थान का नाम हुआ अनिवृत्तिकरण गुणस्थान। अब इस गुणस्थान में क्या होता है आचार्य कहते हैं।

होंति अणियट्टिणो ते, पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा ॥57॥

'होंति अणियट्टिणो ते' वे अनिवृत्तिकरण (अणियट्टि) कहलाते हैं। अब उनकी अनिवृत्ति नहीं होगी, वो कभी लौटेंगे नहीं, उनमें कभी भेद डाला नहीं जा सकेगा। **'पडिसमयं'** प्रतिसमय **'जेस्सिमेक्कपरिणामा'** उस समय

जिनके एक ही परिणाम होते हैं। वे जिनके प्रतिसमय एक ही परिणाम होते हैं वे ही अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव कहलाते हैं। क्या करते हैं ये जीव? अब आप जब कर्मकाण्ड पढ़ोगे तब पता पड़ेगा कि ये जीव क्या करते हैं? काण्ड का मतलब जिसमें सिर्फ जीवों के ही बारे में बताया जाए, जीवों की विशुद्धि, जीवों के परिणाम, जीवों के अनेक तरह के भाव और उन भावों के कारण जो हैं, उसका नाम है जीवकाण्ड। तो यहाँ पर जीवकाण्ड होने के कारण से लिख दिया कि ऐसे जीव जो एक परिणाम को प्राप्त होकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में रहते हैं, ये सब क्या करते हैं **'विमलयर'** विमलतर **'झाण'** ध्यान **'हुयवह'** अग्नि, उसकी **'सिहाहिं'** शिखाएं, ज्वाला के द्वारा **'णिद्दड्ढ'** जला देते हैं, **'कम्मवणा'** कर्म के वन को यहाँ पर जला डालते हैं, कर्मों के समूह, अनेक तरह के मूलकर्म, उत्तरकर्म हैं, तरह-तरह के बंधे हुए कर्म हैं, अलग-अलग तरह की स्थितियां हैं, अनुभाग हैं, न जाने कौन-कौन से जन्मों के कितने कोड़ा कोड़ी सागरों के कर्म जो कब के पड़े हुए हैं, वो सब यहाँ से जलना शुरू होता है। अब यहाँ पर जो कर्म वन जल रहे हैं, ध्यान की अग्नि से जल रहे हैं। इसलिये ध्यान को अग्नि कहा जाता है। ये कोई उपमा नहीं है। वास्तव में ध्यान के माध्यम से कर्म जलेंगे। ध्यान की ये अग्नि इतनी निर्मल हो गयी, इतनी विमलतर हो गयी, इसकी शिखाएं इतनी strong हो गयी कि पहले तो ध्यान की अग्नि इधर-उधर बहती है, हिलती है, तो जितना उसके लिए temperature मिलना चाहिये कर्मों को जलाने के लिए वो नहीं मिल पाता है। अब वो इतनी निर्मल हो गयी, इसमें कोई गिरावट नहीं, मिलावट नहीं, बिल्कुल जब एक जैसी, constant, ध्यान की अग्नि कर्म पर जब अपना प्रभाव डालती है तो वह कर्म जब जलते हैं और वो कर्म जो हमारी आत्मा में अनेक-अनेक जन्मों में, निधत्ति-निकाचित कर्म जिनका हमेशा बंध होता है और इनका बंध होने के बाद में तोड़ने का कोई उपाय नहीं होता है, सिर्फ और सिर्फ नौवें गुणस्थान में कटते हैं, गलते हैं। तीन प्रकार के निधत्ति, निकाचित और उपशामन करण ये तीन करण होते हैं। यानि कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो कर्म केवल उदीरणा और उदय में आने के योग्य नहीं होते। यानि जिन कर्मों को अपकर्षित करके, उदीरणा करके समय से पहले खिराना चाहे तो वो पकड़ में ही नहीं आते, उनकी योग्यता ही नहीं बनती। वे कर्म उपशामन करण वाले कर्म

कहलाते हैं। कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनका न तो अपकर्षण करके उदीरणा कर सकते हैं और न ही पर-प्रकृति रूप संक्रमण कर सकते हैं। पर-प्रकृति यानि दूसरे कर्म में उसको convert नहीं कर सकते हैं। वे अपनी ही स्थिति में बने रहते हैं। उनको हम संक्रमण नहीं कर सकते हैं। वो कर्म कहलाते हैं निधत्ति कर्म और निकाचित कर्म उसको बोलते हैं जिनमें हम न तो कोई अपकर्षित करके उदीरणा कर सके और न ही पर-प्रकृति रूप संक्रमण कर सके और न साथ-साथ में कर्मों की स्थितियों को कम कर सकें यानि अपकर्षण कर सकें और न ही उन स्थितियों को बढ़ा सकें यानि उत्कर्षण कर सकें। जिन में ये चारों काम नहीं होते हैं उनको बोलते हैं निकाचन करण। कर्मों के साथ कर्मों के बंध होने के बाद अलग अलग quality उन कर्मों के बंध के रूप में पड़ जाती है। कुछ कर्म ऐसे हैं जिनमें चार कामों में से कोई काम नहीं हो सकते हैं। कौन से चार काम हैं? उदीरणा-उदीरणा जब भी होती है अपकर्षणपूर्वक होती है। खींचकरके पिछली स्थितियों से कर्मों को आगे लाना। समय से पहले कर्मों को खींचने का काम, उदीरणा के रूप में करके फिर उदय में लाकर खिराया जाता है। तो जिन कर्मों की इस तरह से उदीरणा भी न हो, पर-प्रकृतिरूप संक्रमण भी न हो, अपकर्षण भी न हो और उत्कर्षण भी न हो, वे कहलाते हैं निकाचित कर्म। जिन कर्मों में दो काम तो हो जाएं और दो न हो, और उपशामना करण में अपकर्षण, उत्कर्षण कर सकें, लेकिन उदीरणा न कर सके तो कहलायेगा उपशामना करण। जिन कर्मों में उदीरणा और परप्रकृति रूप संक्रमण वाला काम न कर सकें बाकि उत्कर्षण, अपकर्षण कर सके, तो वो कहलायेगा निधत्तिकरण, और जिसमें चारों ही न हो सके वो निकाचित कर्म। ये तीनकरण समझ लो तीन ताले हैं। कर्मों में ताले लग गए। ये कब खुलेंगे? इनकी चाबी कब मिलेगी? तो वो मिलेगी नौवें गुणस्थान में। बस वही खुलेंगे। नौवें गुणस्थान के संख्यातवां भाग बीतने के बाद इन करणों के माध्यम से, जो भी करण अयोग्य थे, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा, संक्रमण के, वे सब योग्य हो जाते हैं और सबमें सब कुछ कर सकते हैं। यहाँ पर ये काम शुरू होता है। उसके बाद फिर बहुत बड़ा काम है और समय बहुत कम है। कर्मों का क्षय करना, जिस तरीके से बताया गया है, आप कभी क्षपणासार, कर्मकाण्ड पढ़े, तब आपको उसकी पूरी प्रक्रिया नौवें गुणस्थान की प्रक्रिया बहुत बड़ी

है, सबसे ज्यादा काम इसी नौवें गुणस्थान में होना है। दसवें गुणस्थान में तो बहुत कम काम होना है और बारहवें में तो बहुत ही कम होना है और फिर वहाँ से अन्तर्मुहुर्त में केवल ज्ञान होना है लेकिन जो पिछला काम है वो सारा का सारा नौवें गुणस्थान में होने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के लिए ही यहाँ पर सामान्य रूप से इतना लिखा। कर्म वनों को जलाने के लिए अग्नि हमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के परिणामों से, जो ध्यान की शिखा है शुक्लध्यान की शिखा से कर्मों को जलाया जाता है। तो ये नौवें गुणस्थान का सामान्य स्वरुप है। सामान्य से अनिवृत्तिकरण परिणामों का स्वरुप गाथा में 56 से जानना।

जिणवाणी थुदि

(जिणवाणी स्तुति)

सिरि जिणवाणी जग कल्लाणी
जगजणमदतममोहहरी ,
जणमणहारी गणहरहारी
जम्मजराभवरोगहरी ।
तित्थयराणं दिव्वझुणिं जो
पढइ सुणइ मईए धारइ ,
णाणं सोक्खमणंतं धरिय
सासद-मोक्खपदं पावइ ॥

– मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी